योरप के पत्र

धीरेन्द्र वर्मा

२०००

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

योरप यात्रा
की
अमूल्य बलि
"मुन्नन"
को
पापा की भेंट
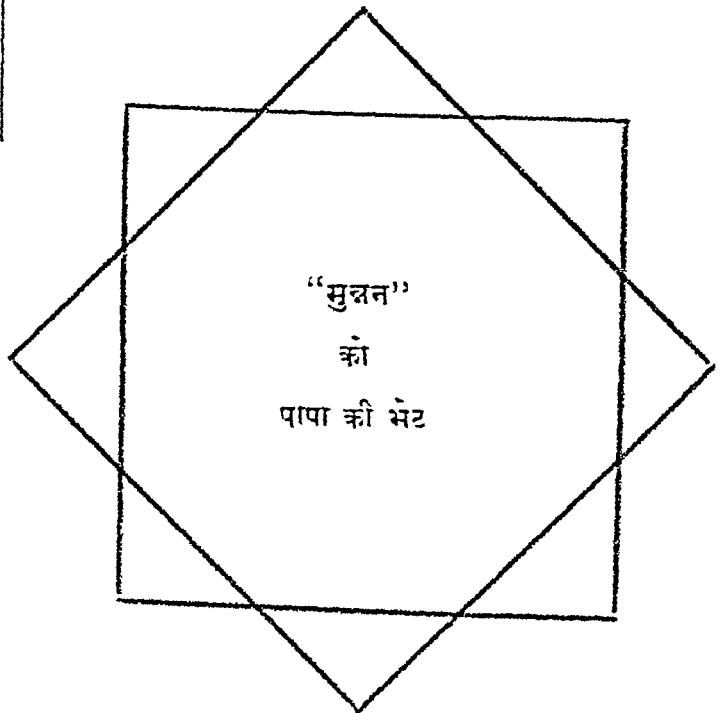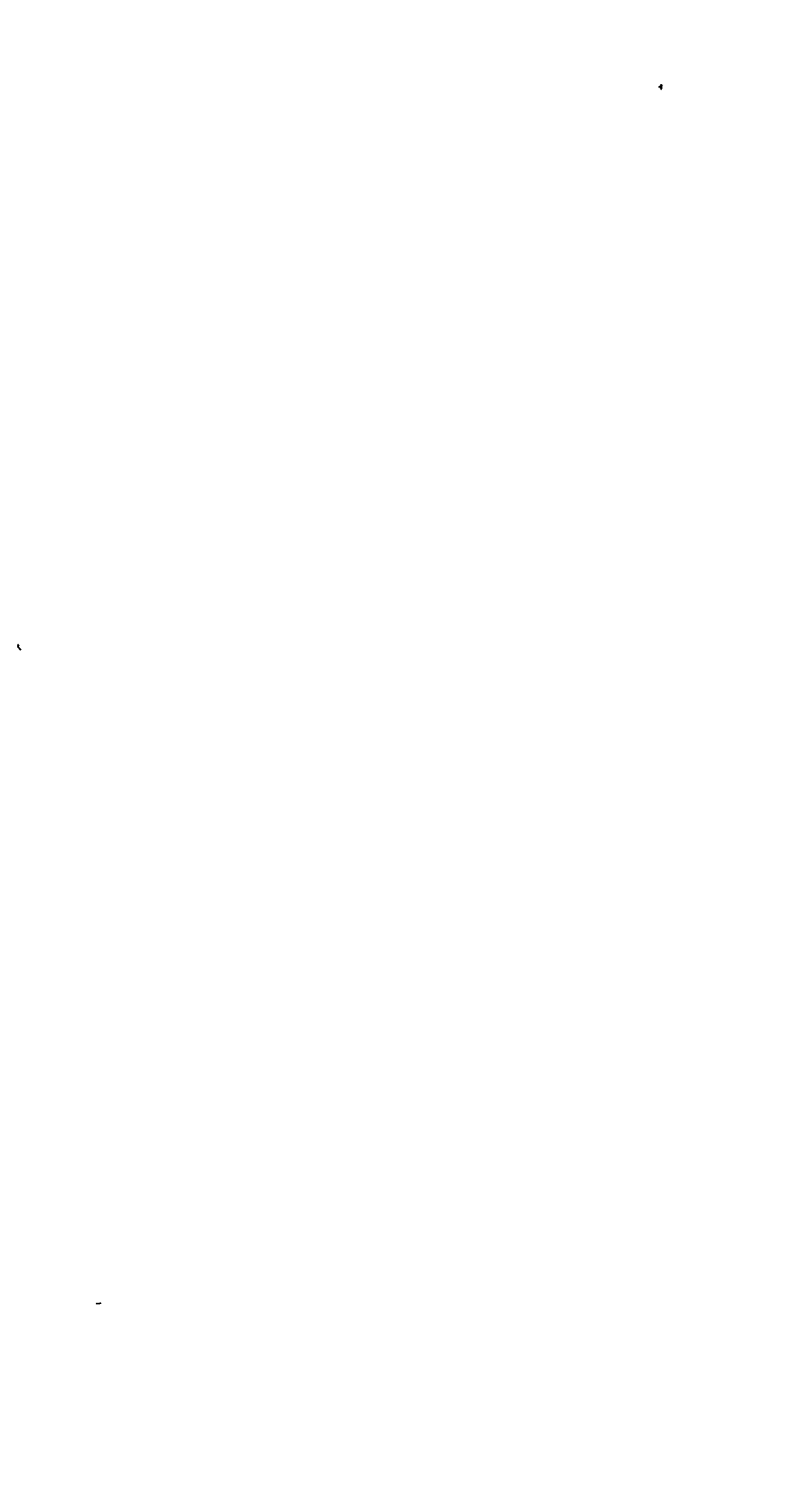
परिचय

अक्तूबर १६३४ मे भाषाविज्ञान के अध्ययन के उद्देश्य से लेखक पेरिस यूनीवर्सिटी गया था और वहाँ लगभग एक वर्ष रहा था। १६३५ मे ईस्टर की छुट्टी मे १०, १५ दिन को इगलैड जाना हुआ था। योरप की गरमियों की छुट्टी मे, जो जुलाई अगस्त में होती है, मित्रमडली के साथ मध्य-योरप के अन्य प्रधान देश घूमने का अवसर मिला था। अपनी योरपीय यात्रा का हाल लेखक ने जिन पत्रो मे अपने पिताजी को लिखा था उन्ही का सग्रह इस पुस्तक मे प्रस्तुत है। ये समस्त पत्र वास्तविक हैं—पत्र की शैली मे लिखी साहित्यिक रचनाएँ नही हैं। इसी कारण इनकी भाषा, शैली, वर्णन आदि मे पाठको को साहित्यिकता की अपेक्षा वास्तविकता का पुट विशेष मिलेगा। व्यक्तिगत तथा घरेलू अशो को निकालने के उद्देश्य से कुछ काटछाँट अवश्य की गई है।

हज़ारों देशवासी योरप की यात्रा कर आए हैं तथा बीसों पुस्तकें भी योरप-यात्रा-सबधी निकल चुकी हैं। ऐसी परिस्थिति मे यात्रा-संबधी इन पत्रों को प्रकाशित करने मे लेखक को सकोच हो रहा था। किंतु जिन मित्रों ने कौतूहलवश इन पत्रो को पढा था उनका कहना था कि इनमे जहाँ-तहाँ कुछ व्यक्तिगत विशेष दृष्टिकोण है जो योरप तथा योरपीय सस्कृति के सबंध मे इतना साहित्य निकल जाने पर भी बासी नही समझा जायगा। इसी भुलावे मे आकर लेखक ने इन घरेलू पत्रों को सर्वसाधारण के समुख रखने का दुःसाहस किया है।

पिताजी के नाम के पत्र 'सुधा' में निकल चुके हैं। उस समय प्रारंभ के सात पत्रों के साथ चित्र नही दिये जा सके थे। अब ये बढा दिए गए हैं।

अन्य पत्रो में भी कुछ चित्र बढ़ाए गए हैं। परिशिष्ट स्वरूप तीन नये अप्रकाशित पत्र-समूह इस पुस्तक मे दिए जा रहे हैं। इनमे से परिशिष्ट (क) मे दिया हुआ पत्र चाचा साहब को उनके एक प्रश्न के उत्तर मे लिखा गया था। परिशिष्ट (ख) तथा (ग) माताजी तथा बच्चो को लिखे गए पत्रो के संकलन है। इन पत्रो मे व्यक्तिगत अंश जान-बूझ कर रहने दिए गए हैं।

इस सामग्री को 'सुधा'-सपादक की अलमारी के कारागार से छः वर्ष बाद मुक्त कराने का असाधारण श्रेय प्रिय सहयोगी डा० रामकुमार वर्मा को है जिसके लिए लेखक उनका चिर आभारी रहेगा। पुस्तक के प्रूफ देखने में पं० उमाशकर शुक्ल ने मेरी सहायता की है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रकाशन-सबधी असाधारण कठिनाइयों के रहते हुए भी साहित्य भवन लिमिटेड के मैनेजर श्री अनतलालजी ने इस पुस्तक को जितने सुदर रूप मे प्रकाशित किया है यह उनके असाधारण उत्साह तथा अध्यवसाय का द्योतक है।

लेखक

पत्र-लेखक

पत्र-सूची

चित्र-सूची

पिता जी के नाम पत्र

१—अरब के समुद्र से पत्र

८ बजे सुबह यहाँ का समय | 'विक्टोरिया'
९ बजे इलाहाबाद का समय | अरब का समुद्र

आज बारह बजे बंबई से चले चौबीस घंटे हो जायँगे।

कल बंबई से एक पत्र डाला था। आशा है, मिल गया होगा। कल सुबह बंबई में बहुत दौड़-धूप रही। टिकट तो लॉयड ट्रिस्टिनो के दफ्तर से पाँच मिनट में मिल गए, लेकिन जगह न मालूम होने की वजह से टॉमस कुक का दफ्तर ढूँढने में कुछ परेशानी हुई। होटल का गाइड ले लेने से यह दिक़्क़त न होती। दफ़्तर मिलने पर भी बंद निकला, क्योंकि हम लोग ६ बजे ही पहुँच गए थे; अतः १० बजे फिर जाना पड़ा। बचे हुए रुपए के 'ट्रैवलर्स चेक' ले लिए गए, किंतु जल्दी में जेनेवा से पेरिस आदि के टिकट नहीं लिए जा सके। मालूम हुआ कि जेनेवा में, टॉमस कुक के दफ़्तर से, आसानी से मिल जायँगे।

ठीक १०½ बजे हम लोग बेलर्डपियर बंदरगाह—बंबई के जहाज़ के स्टेशन—पर पहुँच गए। असबाब स्टेशन से होटल ठेले पर पहुँचा था, और इसी तरह होटल से बंदरगाह पहुँचा। ठेलेवालों ने कुल असबाब के १) और २) लिए। बंदरगाह पर १०) अर्थात् फी अदद पर १) के हिसाब से पोर्टड्यूटी पड़ी, और ३) कुलियों ने जहाज़ पर लदवाई के लिए। अधिक असबाब सफर में हर जगह तकलीफ देता है और खर्च कराता है। असबाब कुलियों के सिपुर्द कर देने के बाद पहला काम डॉक्टरी का था। एक-एक आदमी एक कमरे से होकर गुज़रता था, और वहाँ एक डॉक्टर कलाई छूता था—इसे नब्ज़ देखना कहना तो अत्युक्ति होगी, टीके के बारे में पूछता था कि कब लगा, इधर जल्द बुख़ार तो नहीं आया यह पूछता था, और हलक़ देखता था। मैं पान खा रहा था, इसलिये मुझसे मुँह साफ करके आने को कहा गया, क्योंकि हलक़ का

रंग समझ में नहीं आता था। डॉक्टरी परीक्षा में मुश्किल से एक मिनट लगा होगा।

बंदरगाह के प्लेटफार्म से बिलकुल सटा हुआ जहाज़ खड़ा था, लेकिन क़रीब दोमंज़िले मकान के बराबर ऊँचाई पर डेक था, इसलिये तीन जगह सीढ़ियाँ लगी थीं—दो जगह तो कुलियों के लिये हलका असबाब ले जाने को और बीच में एक बहुत लंबी-चौड़ी मुसाफिरों तथा उनके मिलनेवालों के आने-जाने के लिये। भारी असबाब क्रेन से चढाया जा रहा था। क्रेन के झोले में हम लोगों के बड़े बक्स ऐसे मालूम होते थे, जैसे सकोरे के तराज़ू के पलड़े में छोटी-छोटी गुड़ियाँ। प्लेटफार्म तथा जहाज़ के अंदर आने-जाने के लिये यात्रियों के ख़ास निजी आदमियों को एक-दो फ्री पास मिल सकते हैं, नहीं तो प्लेटफार्म टिकट का ३) लगता है। सीढी पर चढकर हम लोग फर्स्ट क्लास के बराडे में पहुँच गए। ११½ बजे जहाज़ के चलने का समय नियत था, लेकिन छूटने का ठीक समय १२ बजे था। ११½ पर पहली घंटी बजी। इसके बाद जहाज़ पर फिर किसी को साधारणतया नही आने देते थे। पहुँचानेवाले लोग तथा कुली आदि धीरे-धीरे उतरने लगे। इसके बाद तीन मर्तबा, थोड़ी-थोड़ी देर बाद, फिर घंटी या सीटी बजी। ११½ बजे प्लेटफार्म पर आने का दरवाज़ा बिना टिकट-वालों के लिये भी खोल दिया गया। मेरे एक मित्र, जो अपनी यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे और अब यहाँ एक सिनेमा-कंपनी में नौकर हैं, अपने एक रिश्तेदार के साथ, हम लोगों को स्टेशन पर लेने भी आ गए थे, और जहाज़ पर पहुँ-चाने भी आए थे। ये अब प्लेटफार्म पर आ गए थे। इन लोगों के अतिरिक्त इलाहाबाद-क्रिश्चियन-कॉलेज के क़रीब २० विद्यार्थियों की पार्टी हम लोगों की गाड़ी से ही बंबई घूमने आई थी। इनके साथ जो अध्यापक थे, वे हम लोगों के साथ हिंदू-होस्टल में रहे हुए थे। ये भी अपने विद्यार्थियों के साथ अब प्लेटफार्म पर आ गए थे। अतः हम लोगों को पहुँचानेवाले जितने आदमी इस समय बंदरगाह के प्लेटफार्म पर थे, उतने किसी के भी नहीं थे। यह भी एक
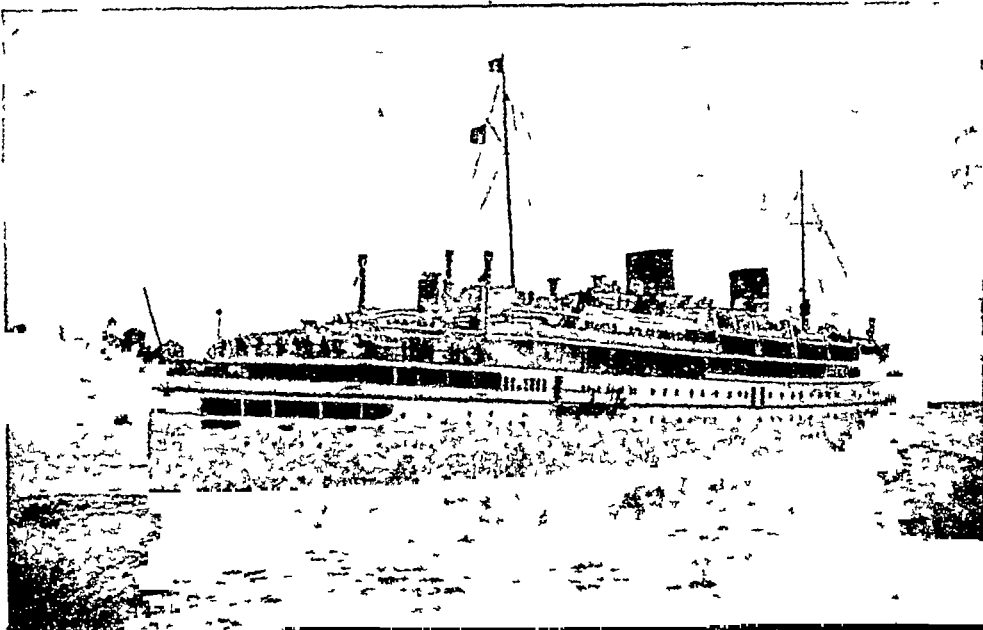
१. 'विक्टोरिया' जहाज़
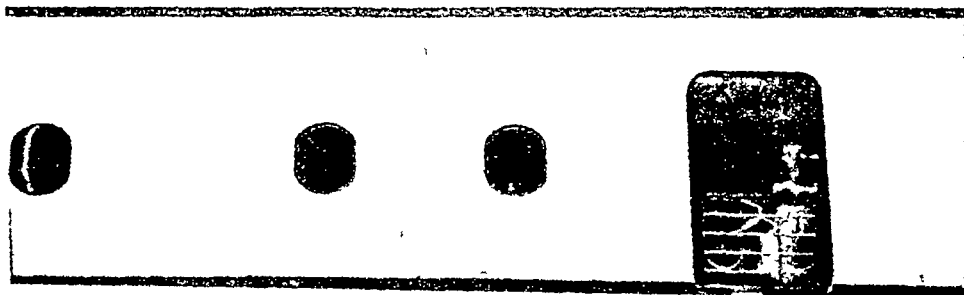
२. जहाज़ छूटने से पहले का एक चित्र

संयोग था। बारह बजने मे पाँच मिनट पर आख़िरी सीढी क्रेन के द्वारा हटा दी गई, और रास्ते के तख़्ते बद कर दिए गए। ठीक बारह बजे जहाज़ पहले धीरे-धीरे पीछे की तरफ हटा, जिससे प्लेटफार्म से दूर हो जाय, और फिर तेज़ी से आगे बढने लगा। पाँच मिनट तक बदरगाह तथा प्लेटफार्म के लोग साफ दिखलाई पड़ते रहे। पद्रह-बीस मिनट मे बबई का अतिम दृश्य आँख से ओझल हो गया। अब तक सब लोग फर्स्ट क्लास के वराडे मे थे। अब धीरे-धीरे अपनी अपनी केबिन की ओर चल दिए।

जहाज़ का हाल तो मैने अभी कुछ बताया ही नही। जहाज़ काफी बड़ा है। लाला रामनारायणलाल की दूकान के ब्लॉक से लबाई, चौड़ाई और ऊँचाई मे क़रीब चौगुना बड़ा होगा। अथवा यो समझिए कि जितना अतर जमुना मे पड़े हुए किन्ही रानी साहबा के बजरे मे और कटोरी मे पड़ी हुई सुशील की काग़ज़ की नन्ही-सी नाव मे होगा, उससे कई गुना अधिक अतर उस बजरे और जमुनाजी तथा इस जहाज़ और समुद्र मे होगा। अभी अच्छी तरह हम लोग जहाज़ नहीं घूम पाए हैं। फर्स्ट क्लास के पब्लिक-रूम्स बहुत शानदार हैं, सेकिंड क्लास के भी काफी अच्छे हैं, तथा सेकिंड इकनॉमिक के भी बुरे नही हैं। हम लोगो के हिस्से में आगे का थोड़ा-सा भाग है। नीचे की मंज़िल ('सी' डेक) पर केबिन हैं। यह मज़िल पानी से क़रीब एकमज़िला मकान के बराबर ऊँची होगी। यहाँ ही पाख़ाना-पेशाबघर आदि और डाइ-निंग-हॉल हैं। डाइनिंग-हॉल युनिवर्सिटी के लार्ज लेक्चर थिएटर से कुछ बड़ा होगा। दूसरी मंज़िल ('बी' डेक) पर ड्राइंग-रूम है। जिसमे क़रीब पचास-साठ लोगों के बैठने की जगह है तथा 'बार' अर्थात् शराब, लेमनेड आदि की दुकान है। इसी डेक पर एक साएदार छोटी गैलरी बैठने के लिये है, जिसमे समुद्र की तरफ एक बड़ा-सा दरवाज़ा लगा है। तीसरी मज़िल ('ए' डेक) पर खुली छत है, जिस पर धूप रोकने के लिये कपड़ा तना है। यहीं डेक चेयर्स पर—जो अब यहाँ सबके लिये मुफ़्त मिलती हैं—हम लोगों का क़रीब-क़रीब

सारा वक्त कटता है। केबिन तो लोग सोने या कोई चीज़ लेने के लिये ही प्रायः जाते हैं। इसी डेक पर दो ऊँचे लकड़ी के प्लेटफार्म हैं, जिन पर डेक पैसेंजर्स जाते हैं। इन पर एक टाट बिछा हुआ है। हम लोगो के साथ केवल दो डेक पैसेंजर्स हैं।

सेकिंड इकनॉमिक क्लास के पब्लिक-रूम्स तो तकलीफ देनेवाले नही है, लेकिन केबिन बहुत तग हैं। लेटने की चार बर्थें बिलकुल रेल के सेकिंड क्लास की-सी हैं। सिर्फ इतनी विशेपता है कि जहाज़ की बर्थों पर एक सफेद चादर बिछी है, एक तकिया रक्खा है, और दो चादरें ओढ़ने के लिये रक्खी हैं। एक शीशा और हाथ-मुह धोने के लिये बेसिन लगा है, जिसमे गर्म और ठडे मीठे पानी के पप हैं। सफेद निशानवाली टुटनी से ठडा और काली निशानवाली से गरम पानी आता है। दो अलमारियाँ हैं, जिनमे एक-एक पल्ले के चार ख़ाने अलग-अलग हैं। इनमे कोट-पैंट टाँगने का इतज़ाम है। इन्ही अलमारियो मे एक-एक ख़ाना ऊपर और नीचे अलग है। ऊपरवाले मे लाइफबेल्ट रक्खी है, और नीचेवाले मे चीनी का एक कूँड़ा, जो उल्टी या रात मे पेशाब करने के काम आ सकता है। इसके अतिरिक्त फी आदमी के हिसाब से एक गिलास पानी पीने के लिये, एक छोटा अँगोछा हाथ पोछने के लिये और एक बड़ा तौलिया नहाने के समय इस्तेमाल करने के लिये रहता है। एक बोतल मे पीने का पानी रक्खा रहता है। अलमारियो की ताली अलग-अलग रहती है। कमरा खुला रहता है। बर्थें दो नीचे और दो ऊपर हैं। हरएक बर्थ के सिरहाने एक रोशनी रहती है, जो लेटे-लेटे ही जलाई जा सकती है। कमरे की एक रोशनी अलग है। सिरहाने एक बटन भी है, जिसे दबाने से स्टुअर्ड या कमरो का नौकर आ जाता है। हवा के लिये केबिन में एक पोर्टहोल है, किंतु यह रात को अक्सर बंद कर दिया जाता है। छत मे दो सूराख़ो द्वारा ऊपर से हवा भेजी जाती है। केबिन मे जो सबसे बड़ी तकलीफ है, वह हवा की कमी और जगह की तगी की है। इसीलिये लोग केबिन में प्रायः कम रहते हैं। रात की मजबूरी है। सेकिंड
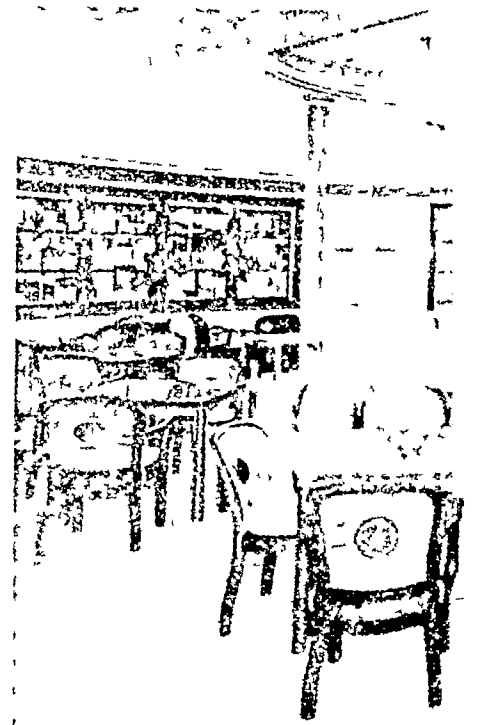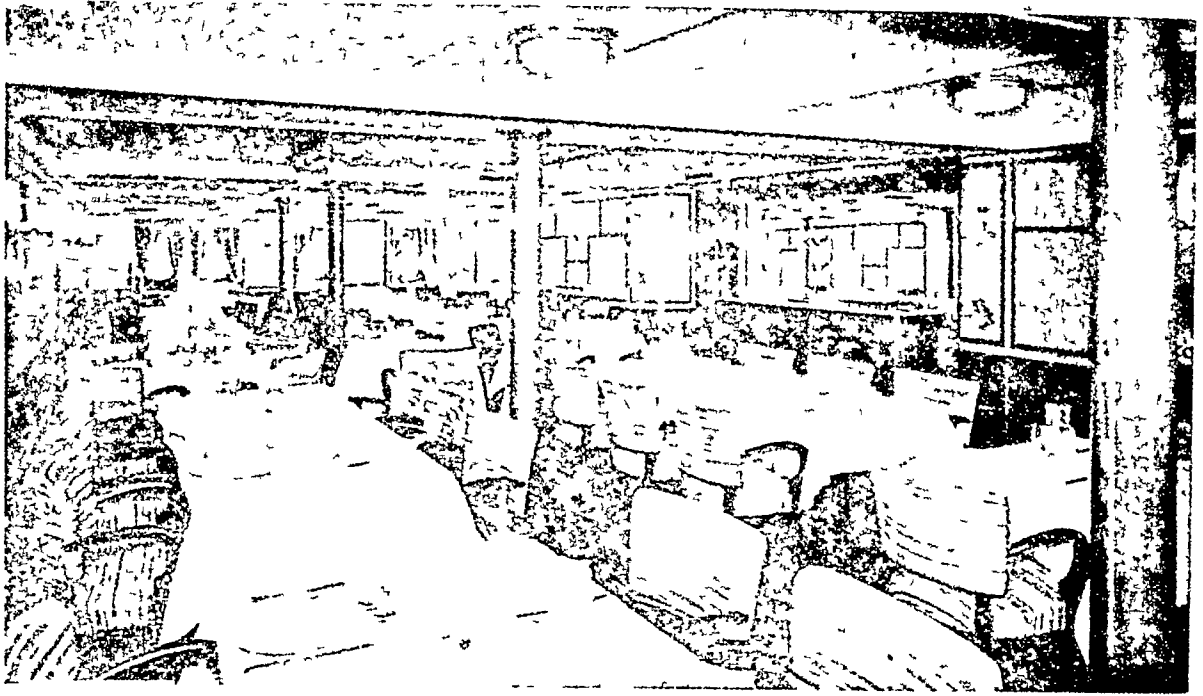
५. जहाज़ की सु

जो खेलने के लि
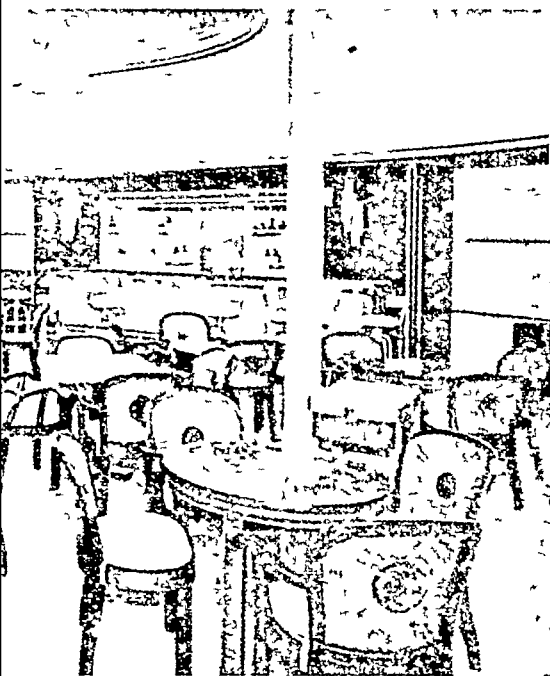
स के यात्रियों के खाने का कमरा

४. फर्स्ट क्लास के यात्रियों के बैठने तथा सिगरेट-शराब आदि पीने का कमरा

ऊपर की छत
आती है
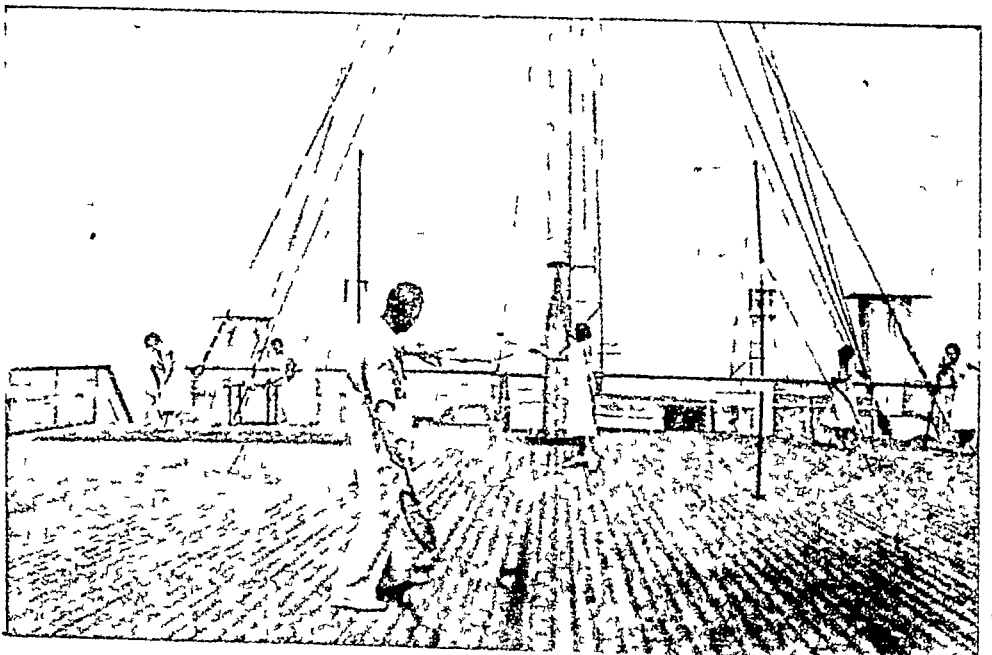
क्लास के कमरे भी इसी डेक पर हैं। इनमें जगह तो कुछ ज़्यादा है, किंतु हवा इनमें भी अधिक नहीं मिल सकती। फर्स्ट क्लास के कमरों में दोनो बातो का सुबीता है। पाख़ाना-पेशाबघर, बाथ-रूम आदि अँगरेज़ी ढग के हैं। ख़ूब साफ हैं, किंतु हब्स हर जगह है। बिजली और मसनूई हवा से काम चलता है। कम-से-कम वक्त में सब कामो से निपटकर ऊपर भागने को तबियत चाहती है।

खाना भी अँगरेज़ी ढग का है, और उसी तरह खाया और परसा जाता है। सुबह ७½ बजे नाश्ता (ब्रेकफास्ट), १ बजे दोपहर का खाना (लच), ४ बजे फिर नाश्ता (टी) और ७½ बजे शाम का खाना (डिनर) होता है। शाकाहारी लोगों के लिये डबल-रोटी और एक तरह की गोल मोटी-छोटी रोटी के अतिरिक्त तरकारी-चावल (करी-राइस), कटी हुई कच्ची तरकारियाँ (सैलड) तथा उबली बिना नमक की तरकारियों के टुकड़े ख़ास भोजन हैं। दोपहर के खाने के बाद सेब, नारगी या कोई अन्य फल भी रहता है। नाश्ते के समय दूध में बनी ओट की खीर (पारिज), चटनी की शक्ल का मुरब्बा (मरमलेड) और चाय, काफी या दूध रहता है। टोस्ट-मक्खन तो होता ही है। मास खानेवालो के लिये अडे के चीले, मछली व हर जानवर का गोश्त रहता है। अभी डटकर खाने की नौबत तो नहीं आई है, लेकिन सामान ऐसा और इतना होता है कि पेट भरकर खाया जा सकता है।

जहाज़ चलता है, तो उसका हिलना एक नए तरह का अनुभव है। मेरे एक साथी के शब्दो मे रेल दाहने-बाएँ हिलती है, और जहाज़ धीरे-धीरे ऊपर उठता और नीचे जाता है। गाँव के मेलो के झूलो मे जैसा अनुभव होता है, दिमाग़ पर कुछ-कुछ वैसा ही असर जहाज़ मे मालूम होता है। इसके अतिरिक्त जहाज़ क़रीब २०-२२ मील फी घंटे के हिसाब से दौड़ता है, इसलिये समुद्र का पानी उतनी ही तेज़ी से पीछे हटता मालूम पड़ता है, जितनी तेज़ी से रेल की खिड़की से ज़मीन। इन दोनों का असर यह होता है कि दिमाग़ मे चक्कर का-सा अनुभव होता है। मोटर या एजिन का शोर भी होता रहता है; लेकिन

उतना नही, जितना रेल का। समुद्र का पानी कटने की आवाज़ इस सबके अतिरिक्त है, और यह हम लोगो के हिस्से में विशेष है। कुर्सी पर लेटे रहने से लोगों को विशेष कष्ट नही होता, किंतु चलने या खड़े होने पर कुछ लोगो को घुमनी आती है। हम लोगो के दर्जे में लगभग ५० स्त्री-पुरुष होंगे, क़रीब एक दर्जन लोग कमोवेश कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। बहुत-से लोग दुबारा-तिबारा जानेवाले हैं, इसलिये उन्हे कुछ भी मालूम नही होता। मेरी हालत अभी तक बिलकुल ठीक है। कुछ चक्कर मालूम पड़ता है, लेकिन इतना अधिक नहीं कि किसी प्रकार का कष्ट मालूम हो। ज़्यादा खाना न खा सकने और ज़्यादा न सो सकने की वजह से वक्त ज़रा मुश्किल से कटता है। कल तो पढ़ने मे दिमाग़ घुमनी की वजह से जम नही पाता था। आज वक्त काटने के लिये डेक-चेयर पर लेटा यह लबी चिट्ठी बिना किसी कष्ट के लिख रहा हूँ। दो-एक लोगों को बहुत अधिक कष्ट हो गया है। एक बूढ़े अँगरेज़ अपने कमरे मे ही पड़े हैं, तथा एक गुजराती स्त्री—जिनके साथ एक बच्चा भी है—आज ज़रा देर को पकड़कर डेक पर लाई गई थी। बेचारी बहुत घबरा रही थीं। ऐसी हालत में केबिन में पड़ा रहना तो और भी भारी भूल है, क्योंकि इस क्लास के केबिन मे तो हट्टा-कट्टा आदमी भी यदि बद कर दिया जाय, तो घबरा उठे।

समुद्र बिलकुल शात है। जमुनाजी का-सा नीला पानी है। आज सुबह से अब तक तो बड़ी लहरे भी नही उठ रही हैं। कल शाम थोड़ी देर को कुछ लहरे अवश्य रही थीं, लेकिन वे भी इससे अधिक नही, जैसी कुछ-कुछ बरसात में जमुनाजी में उठती हैं। आँधी आने पर अवश्य बड़ी लहरे उठती होंगी, लेकिन इसका मुझे अभी अनुभव नहीं है। खिड़की से देखने से बिलकुल ऐसा मालूम होता है, जैसा जमुनाजी पर तेज़ी से कोई स्टीमर जा रहा हो। जहाज़ के काटने की वजह से जहाज़ के चारों ओर कुछ हिस्से में पानी ज़रूर लौट-पौट होता रहता है। कल तो किनारे से ३०-४० मील पर पालवाली मल्लाहों की छोटी-छोटी नावे दिखलाई पड़ी थीं। कभी-कभी उड़नेवाली मछलियाँ भागकर
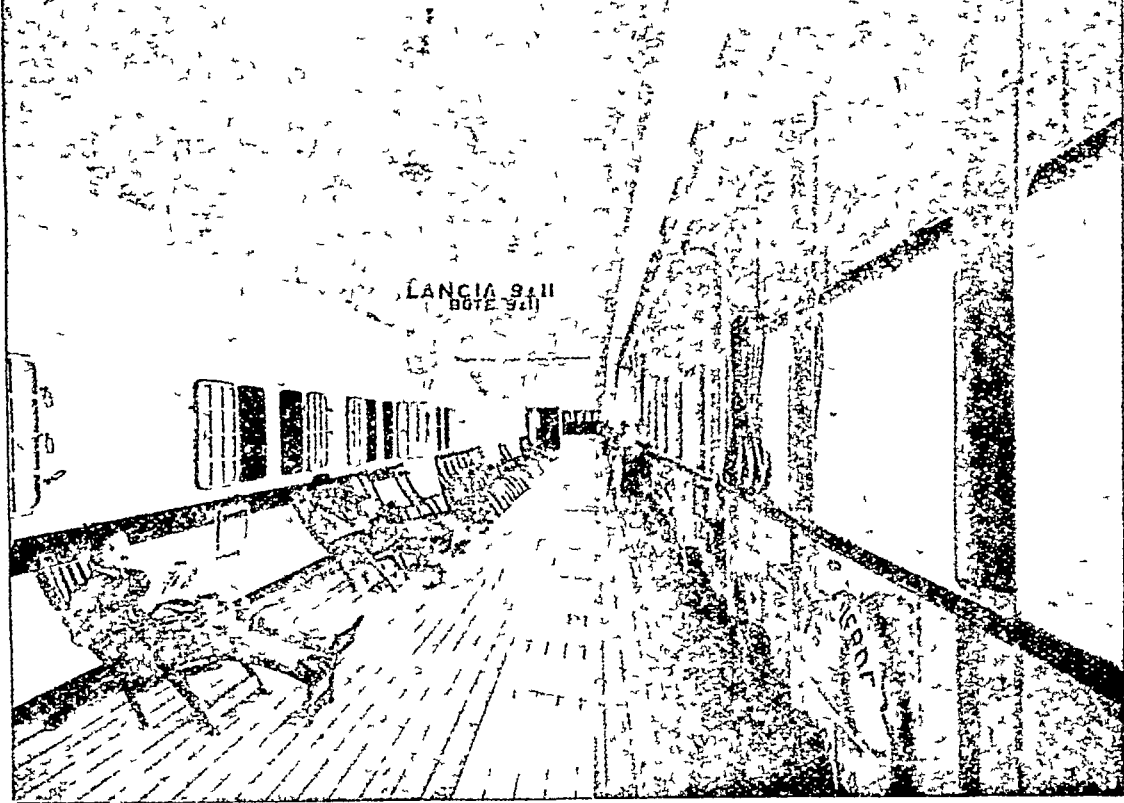
६. फर्स्ट क्लास के यात्रिया के टहलने तथा बैठने का वराडा
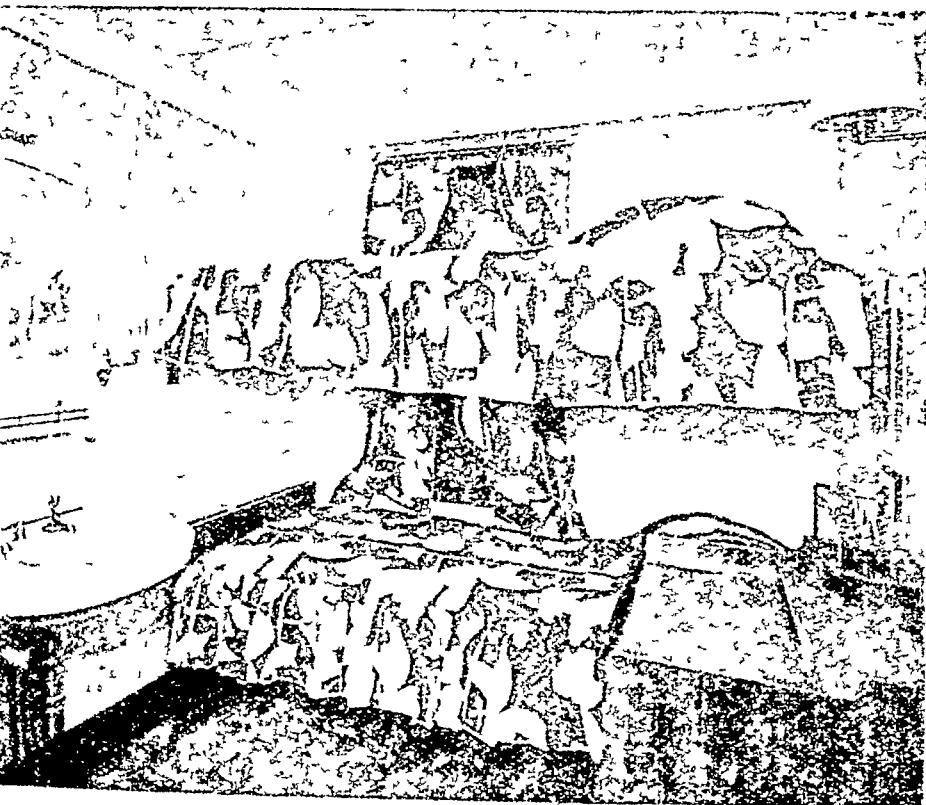
७. सेकिंड क्लास के यात्रियों की केबिन

जहाज़ से अपनी जान बचाती हैं। समुद्र की विशालता ख़ास चीज़ है। मानो आप जमुनाजी के बीच मे हों, और किसी तरफ भी ज़मीन न दिखलाई पड़ती हो, फिर दिन-रात २०-२२ मील फी घटे की रफ्तार से चले, और पानी का अत न हो। गहराई की विशेषता का अनुभव ऊपर से नही होता। रेल की खिड़की की तरह जहाज़ के डेक पर भी हवा ख़ूब लगती है। सुबह-शाम बाहर गरम कोट बुरा नही लगता, किंतु दिन-भर ठडे कपड़े ही आराम देते हैं।

हमारे क्लास मे कुछ विद्यार्थी हैं, जिनमे से अधिकाश बगाली हैं, अतः अपना गुट अलग बनाए रखते हैं। कुछ मद्रास की तरफ के भारतीय मिशनरी और लड़कियाँ हैं, कुछ साधारण श्रेणी के अँगरेज़ या ऐंग्लो-इडियन हैं, और कुछ तिजारत-पेशा हिंदोस्तानी। मेरे ख़याल मे हम लोगों की हैसियत के लोगों के लिये आराम तथा सोसाइटी दोनों के ख़याल से सेकिंड क्लास अधिक उपयुक्त है। एक तरफ से सौ-सवासौ रुपए से ज़्यादा ख़र्च भी नही बढता। यह अवश्य है कि सेकिंड इकनॉमिक मे वक्त-वक्त के कपड़े पहनने आदि के क़ायदे-क़ानून विशेष नही हैं। अक्सर लोग सफेद शर्ट और निकर या पैंट पहने घूमते रहते हैं, और ऐसे ही खाना खाने भी चले जाते हैं। कोई आपत्ति नही करता। अब तक के मौसम की दृष्टि से यहाँ के लिये यही पोशाक सबसे अधिक मौज़ूँ मालूम पड़ती है। इस समय लच का घंटा—जैसा ठाकुरद्वारे मे बजता है—बज गया है, अतः वहाँ जा रहा हूँ।

* * *

परसों यह विस्तृत पत्र लिखा था, आज इसे समाप्त कर रहा हूँ। मालूम यह हुआ कि जहाज़ अदन आज रात को १२, १ बजे के बाद पहुँचेगा, और एक-दो घटे दूर से डाक आदि ले-देके रात मे ही चल देगा। चिट्ठियाँ यहाँ जहाज़ पर ही डालनी होंगी। मतलब यह कि अदन देखने को नहीं मिलेगा, और न ज़मीन ही तीन-चार दिन और, स्वेज़ पहुँचने तक, देखने को मिलेगी। अब धीरे-धीरे सब लोग यहाँ की ज़िंदगी के आदी हो गए हैं। वह गुजराती महिला

भी अब अपने आप ऊपर चली आती हैं और बैठी रहती हैं। पहली बार यात्रा करनेवालो के लिये पहले एक-दो दिन कुछ अटपटा-सा लगता है। मैं बिलकुल ठीक हूँ। घर का हाल तो मुझे अभी हफ़्ते-डेढ़ हफ़्ते बाद मिलेगा। आशा है, सब कुशल होगी। यदि समय मिला, तो जेनेवा में जहाज़ से उतरने पर केबिल कर दूँगा। यह आपको २० तारीख़ तक अवश्य मिल जायगा। सब लोगों से मेरा यथायोग्य कह दीजिएगा। स्वेज़ से दूसरा पत्र भेजूँगा, लेकिन जेनेवा से भेजा हुआ केबिल शायद उससे पहले मिल जायगा। मौसम अभी तक बहुत अच्छा है। दिन-भर एक क़मीज़ और पैंट से ही काम चल जाता है। समुद्र बिलकुल झील की तरह है, और दिन-भर धूप खिली रहती है। कोई और विशेष बात नहीं है। हम लोग स्वेज़ से मिस्र की राजधानी कैरो घूम आने को सोच रहे हैं।

११-१०-१९३४

२—भूमध्यसागर से पत्र

'विक्टोरिया'

मेडिट्रेनियन समुद्र

पिछले पत्र में मैं लिख चुका हूँ कि हम लोगों ने मिस्र की राजधानी कैरो जाने का निश्चय किया है।

परसो रात नौ बजे जहाज़ स्वेज़ पहुँचा। आगे रास्ता बद था। सामने तीन तरफ स्वेज़ की सड़को और इमारतों की दीपमाला दिखलाई पड़ती थी, मानो हम लोगों के आने की ख़ुशी में दिवाली मनाई जा रही हो। यहाँ जहाज़ पर शारीरिक परीक्षा होती है। एक दिन पहले से इसकी धूम थी, और सूचना दी गई थी कि सब लोग खाने के कमरे में जमा हो। किंतु इसे शारीरिक परीक्षा कहना अत्युक्ति होगी। एक सज्जन के शब्दो में जैसे म्युनिसिपल डॉक्टर उन जानवरो की परीक्षा करते हैं, जो बूचड़ख़ाने जाते हैं, वैसी ही यह परीक्षा भी थी। सब लोग क़तार बाँधकर डॉक्टर के सामने से निकाल दिये गये। कुछ की शक्ल डाक्टर साहब देख पाए, और कुछ की नहीं। बस, 'फिनिश'। लेकिन इस स्वाँग मे १० बज गए। जहाज़ बदरगाह से दूर ठहरा था, इसलिये सीढी लटका दी गई थी, और हम लोग उस पर से होकर मोटर-बोट के द्वारा किनारे पहुँचा दिये गये।

हम लोगो को यह बतलाया गया था कि कैरो घूमने का प्रबध टॉमस कुक के सिपुर्द किया गया है। लेकिन किनारे पहुँचकर पता चला कि एक इटैलियन कपनी 'इटैलियन एक्सप्रेस' के सिपुर्द यह प्रबध है। टॉमस कुक तो अँगरेज़ी कपनी है, और यह जहाज़ इटैलियन लोगो का है। ये लोग छोटी-छोटी बातो मे भी इसका ख़याल रखते हैं। इस जहाज़ पर खाने के समय छुरी, काँटा, अचार, मुरब्बा, बर्तन आदि जो कुछ भी सामान हमारे सामने आता है, सब इटली

का बना होता है। फिर यह तो ज़रा बड़ी बात थी।

स्वेज़ से कैरो ९८ मील है। रेल का समय न होने की वजह से मोटरो का प्रबध था। हम लोगो के अतिरिक्त पाँच-छः इटैलियन यात्री भी थे। अतः दो मोटरो पर, १०½ बजे रात को, हम लोग रवाना हुये। १०-१५ मील शुरू और आख़िर मे तो ऐसफाल्ट की अच्छी सड़क थी, बाक़ी बीच मे शिवकोटी की सड़क से भी बदतर। रास्ते म कही भी गाँव, हरियाली-वगैरह के चिह्न नही मिले। रात मे पौन बजे हम लोग मिस्र की राजधानी कैरो पहुँच गये। मोटर चलानेवाला ४० मील फी घटे से कम चलाना जानता ही नही था, ऊपर ५० मील फी घटे तक अवश्य पहुँच जाता था। शिवकोटी की सड़क पर ४०-५० मील फी घटे की रफ़्तार से चलने पर जो धक्के लग सकते हैं, उनका अनुमान किया जा सकता है। हमारे गाइड का तो कहना था कि धीरे-चलने से ज़्यादा धक्के लगते है, इसीलिये इतना तेज़ चलना पड़ता है।

रात मे एक बजे भी कैरो का बाज़ार बिलकुल बंद नही हुआ था। थोड़ी-बहुत चहल-पहल जारी थी। कलकत्ते की तरह यहाँ भी शहर में सुबह तीन बजे से चार बजे तक केवल एक घंटे को, बिलकुल सन्नाटा होता है, नही तो रात-भर ट्रैम, मोटर आदि की घड़घड़ सुनाई पड़ती है। हम लोग एक इटैलियन होटल मे, तीसरे मजिल पर, ठहराए गए थे। दूसरे दिन ९ बजे सुबह से घूमने का प्रोग्राम शुरू होगा, यह सूचना देकर गाइड ने हम लोगो को होटल-मैनेजर के सिपुर्द कर दिया।

दूसरे दिन सुबह ९ बजे से शाम के ५ बजे तक हम लोग मोटरों पर कैरो घूमे। दोपहर को घटे-डेढ़ घंटे के लिये खाना खाने होटल ज़रूर लौटे। शाम को ६ बजे की गाड़ी से कैरो से रवाना होकर १० बजे पोर्टसईद पहुँचे। ११ बजे जहाज़ पोर्टसईद से रवाना हुआ।

कलकत्ता या नई दिल्ली की तरह कैरो नगर के भी दो हिस्से हैं—एक नया योरपियन ढग का शहर, जिसमे प्रायः विदेशी रहते हैं, और दूसरा पुराना

८. कैरो का बाज़ार
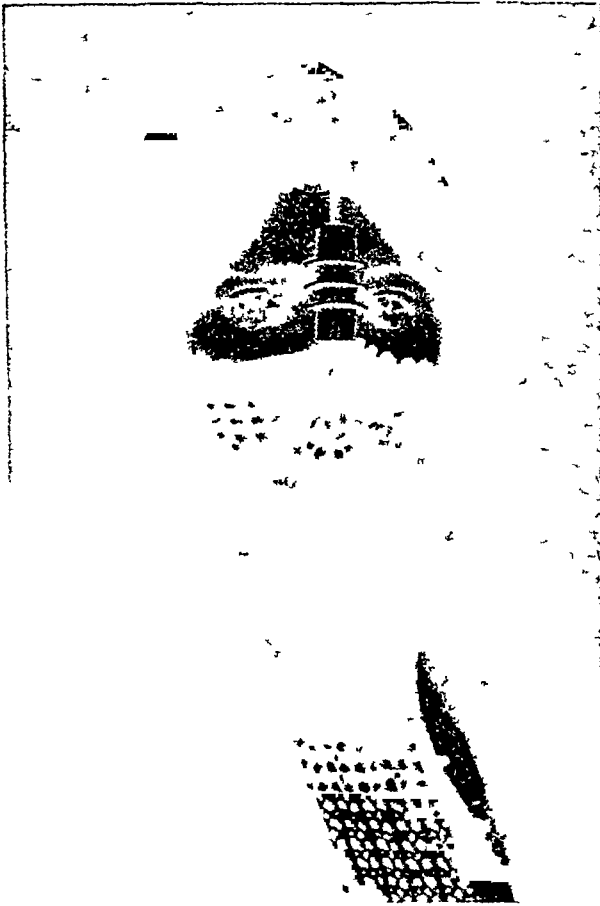
९. मिस्री स्त्रियों का 'ऐशमक' या उल्टा घूँघट

देशी शहर। नया शहर कलकत्ते के एस्प्लानेड से मिलता-जुलता है, लेकिन उससे कहीं अधिक बड़ा और शानदार है। पुराने शहर मे आगरा और बरेली के बाज़ारों की याद आती थी। नए शहर के बारे मे लिखना व्यर्थ है, क्योंकि इस नक़लवाले हिस्से मे कोई नवीनता नही थी। यह तो हज़रतगज, कलकत्ता, बबई, लदन, पेरिस कही भी देखा जा सकता है। पुराने शहर मे कुछ-कुछ मिस्र की अपनी छाप बाक़ी थी, यद्यपि अपने देश के नागरिक जीवन की तरह इसके भी बहुत दिन टिकने की आशा नही दिखलाई पड़ती। यहाँ भी बाज़ारे विदेशी कपड़े तथा शृगार के सामान से भरी थी। निम्न श्रेणी के लोग अब भी बिलकुल नीचे तक लटकनेवाला चोग़ा पहनते हैं और सिर पर कुलहे की तरह टोपी के चारो ओर पतली पगड़ी-सी बाँधते हैं। मध्यम श्रेणी के खाते-पीते लोगो के सिर पर कुलहे की जगह लाल तुर्की टोपी दिखलाई पड़ती थी। किंतु मध्यम श्रेणी की नई खेप के तन पर बढिया अँगरेज़ी कोट, पतलून, टाई हैट आ गया है।

कैरो के बाज़ार की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि यहाँ स्त्रियाँ आज़ादी से घूमती-फिरती और सामान ख़रीदती दिखलाई पड़ती थीं। अगर तिहाई नहीं, तो चौथाई बाज़ार औरतो से अवश्य भरा था। मिस्र की प्रत्येक औरत सिर से पैर तक काली चादर ओढे रहती है, और पुराने फैशन की औरते नाक के नीचे के हिस्से पर 'ऐशमक' या काली जाली डाले रहती हैं। प्रत्येक औरत इस काली शक्ल मे ही नज़र आती थी। अदर के कपड़े औरतों मे मे भी कुछ के अँगरेज़ी ढग के हो चले हैं, लेकिन उतने अधिक नही जितने मर्दों के। कैरो मे मैंने हर चीज़ बिकती पाई—बैंगन, आलू, भिडी, तरबूज़, भुट्टे, काले गन्ने। रोटी बहुत मोटी, ख़ूब सिंकी हुई जगह-जगह बिकती है। थोड़ी-थोडी दूर पर काफी-घर हैं। उनके बाहर सड़कों के किनारे छोटी-छोटी मेज़-कुर्सी पड़ी रहती हैं, और इन पर बैठकर लोग काफी पीते हैं और ग़प-शप करते हैं। पुरुष वैसे ही ढीले हैं, जैसे अपने देश के। ग़रीबी कम अवश्य मालूम होती है।

गंदगी और गड़बड़ी भी वैसी ही नज़र आती है, जैसी अपने बाज़ारों में। पुलिस भी मैंने अपने यहाँ की पुलिस की तरह ही रोब दिखलानेवाली, किंतु काम या मदद कम करनेवाली पाई। मिस्र के असली बाशिंदे 'काप्ट', जो बहुत बड़ी संख्या में ईसाई हो गए हैं, प्रायः मुफस्सिल मे रहते हैं। कैरो मे भी उनकी बस्ती है, किंतु इन लोगो के हाथ में शक्ति कुछ भी नही है। यहाँ का शक्तिशाली-वर्ग अरब और टर्की के मुसलमानो का है, जो कई पीढियों से यहाँ रहता है। इसीलिये यहाँ की राजभाषा अरबी है, यद्यपि हर जगह अरबी भाषा तथा अक्षरो के साथ, उनके नीचे, ॲगरेज़ी या फ्रांसीसी-भाषा तथा रोमन अक्षर भी दिखलाई पड़ते हैं।

दर्शनीय स्थानो मे सबसे पहले हम लोग पिरैमिड या मिस्र के प्राचीन राजाओ की क़ब्रे और स्फिक्स या आदमी के चेहरेवाली पत्थर की मूर्ति, जिसका संबध सूर्य देवता से माना जाता है, देखने गए थे। यह स्थान शहर के बाहर दस-बारह मील पर है, और मिस्र के सबसे अधिक दर्शनीय तथा महत्वपूर्ण स्थानो में गिना जाता है। ये चीज़े वैसे ही एक पहाड़ी पर हैं, जैसे जोधपुर में पहाड़ी पर हम लोगो ने स्मारक-मदिर देखा था। चारों तरफ का दृश्य उससे भी अधिक वीरान है। अपने देश मे साँची के स्तूप इनसे कम महत्त्व पूर्ण नही हैं। कला मे तो इनसे कही बढकर हैं। पिरैमिड बड़े-बड़े पत्थरों का ढेर-मात्र हैं। कला की कही गुॅजाइश ही नही। स्फिक्स, तसवीर से जैसा अदाज़ होता है, वैसी बड़ी चीज़ नहीं है। इन स्मारकों मे प्राचीनता की विशेषता अवश्य है, लेकिन अब तो अपने देश मे सिंधु की घाटी के अवशेष कदाचित् इनसे भी अधिक प्राचीन सिद्ध हो चुके हैं।

नगर मे यहाँ के मुसलमान शासकों की कई मस्जिदे तथा मक़बरे देखे। क़िला भी देखा। मस्जिदो आदि की दीवारें तथा छतें बहुत मोटी और ऊँची अवश्य हैं, किन्तु कारीगरी की दृष्टि से आगरा और दिल्ली की इस क़िस्म की इमारतों के सामने पैर का धोवन भी नहीं जॅचतीं। क़िले में पुराना महल उदय-
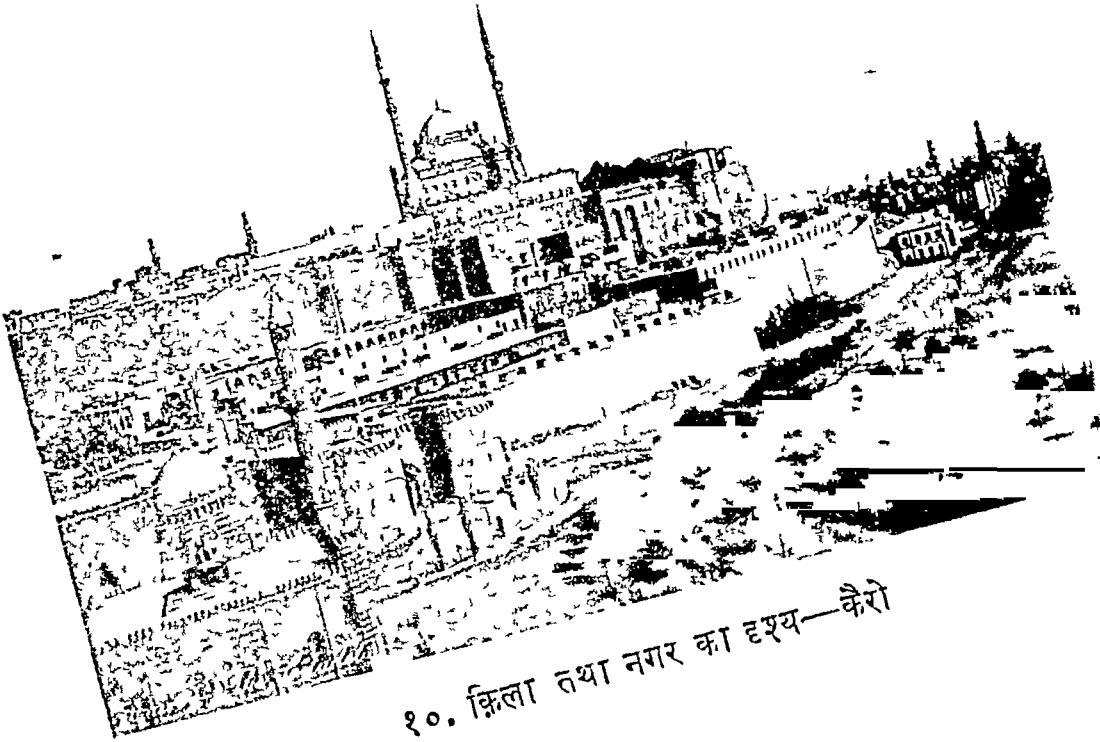
१०. क़िला तथा नगर का दृश्य—कैरो
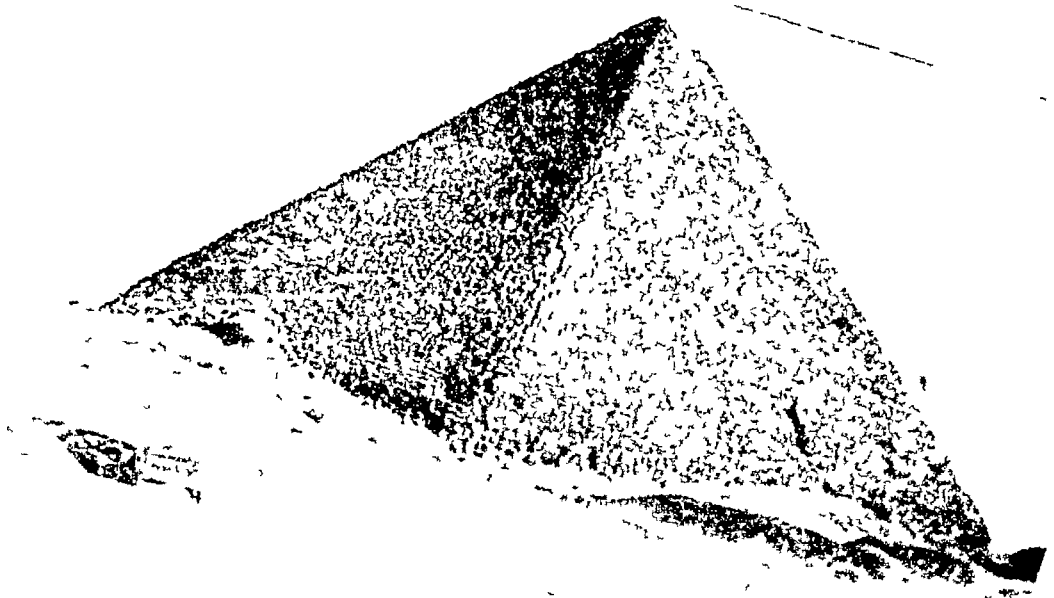
११. पिरेमिड
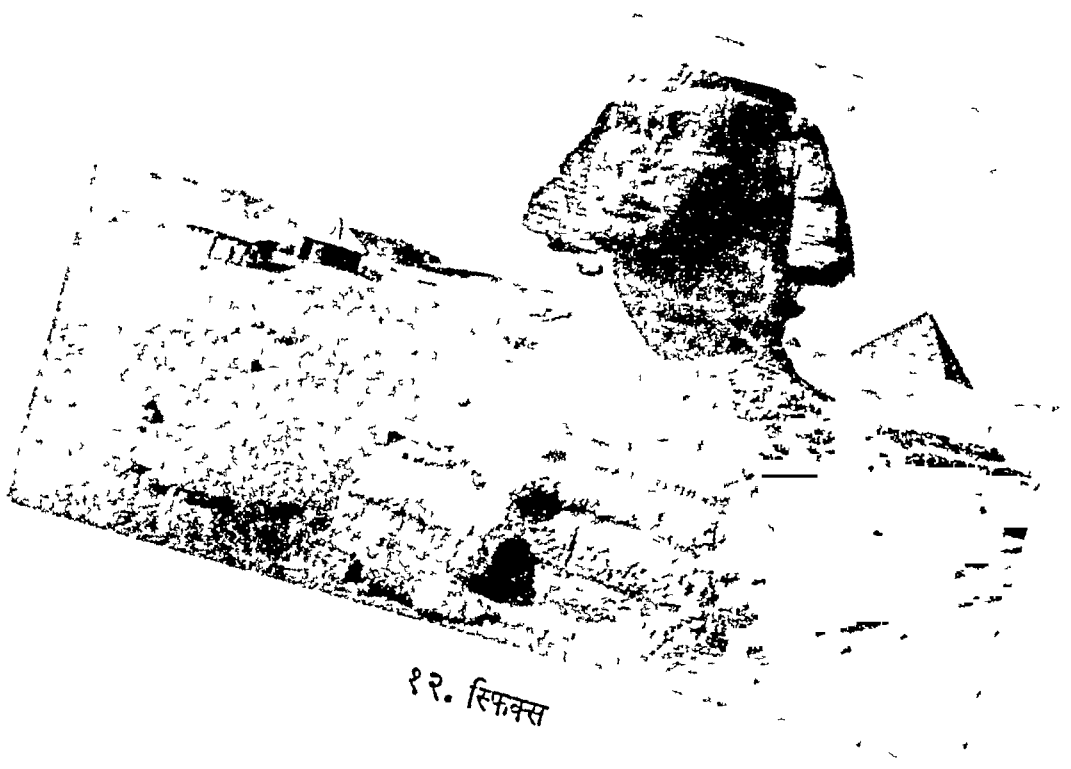
१२. स्फिक्स

१२. दशहरा उत्सव पर लिया गया 'विक्टोरिया' जहाज़ के भारतीय यात्रियों का फ़ोटो
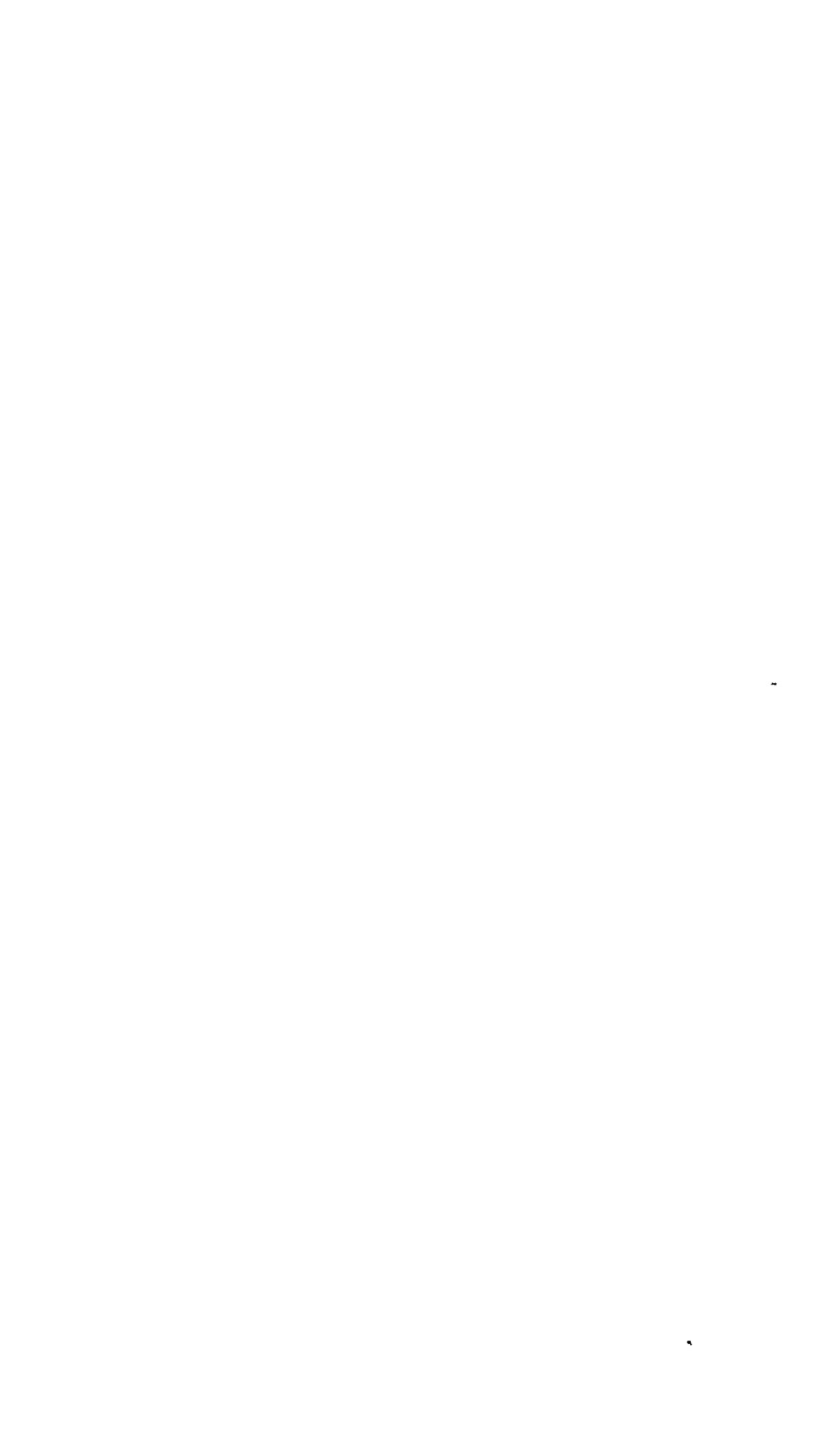
पुर के पुराने महल से कईगुना बदतर था। कला की बारीकी कदाचित् ईरान और भारत की अपनी विशेषता है।

कैरो मे कुछ स्थल ईसाइयो के तीर्थस्थान स्वरूप भी हैं। इनका सबंध हज़रत मूसा और ईसा मसीह से जोड़ा जाता है। यहूदी तथा रोमन-कैथलिक ईसाई इन्हें वैसे ही श्रद्धा और प्रेम से देखने आते हैं, जैसे अपने यहाँ लोग वृंदावन, अयोध्या और चित्रकूट मे रामचद्रजी तथा कृष्णजी से सबध रखनेवाले स्थानों को देखने जाते हैं। इनकी दुर्गति भी वैसी ही थी जैसी अपने यहाँ के स्थानों की है—वैसी ही गदगी, वैसे ही भिखमंगे और लगभग वैसे ही पुजारी। एक जगह तो बिलकुल भरद्वाज के दृश्य का स्मरण हो आया। कैरो का चिड़ियाघर कलकत्ते के चिड़ियाघर से भी कईगुना बड़ा और सुदर है। यहाँ का अजायबघर सोमवार को बंद रहता है, इसलिये वह देखने को नही मिला।

नील-नदी बरसाती गगा से आधी होगी। यह मिस्र देश की प्राण है। इसकी तीन-चार मील चौड़ी घाटी मे ही सब कुछ है—हरियाली है, खेती होती है, मनुष्य रहते हैं। उसके बाहर चारो ओर वीरान पहाड़ियाँ और रेगिस्तान है। कैरो नगर इसी के किनारे बसा है। कैरो के ऊपर नील-नदी का डेल्टा शुरू हो जाता है। हाँ, कैरो के प्रसिद्ध, प्राचीन विद्यापीठ का ज़िक्र करना तो रह ही गया। इसे देखने भी हम लोग गए थे। यहाँ केवल धार्मिक शिक्षा होती है। बहुत बड़ा-सा आँगन और कई बड़े-बड़े दालान हैं, जहाँ ज़मीन पर शीतलपाटियों के ऊपर जगह-जगह बैठे हुए बड़ी उम्र के विद्यार्थियों के गिरोह पढ रहे थे और बाते कर रहे थे। किसी प्रकार का भी नियम या क्रम नज़र नही आता था। जूते उतार कर विद्यार्थी अपने साथ अंदर ले जाते हैं, और वे प्रत्येक विद्यार्थी के सामने रक्खे रहते हैं—पीछे नही, जैसा अपने यहाँ रिवाज है। नई यूनिवर्सिटी हम लोग नहीं देख पाए, लेकिन यह इलाहाबाद में रोज़ ही देखने को मिलती है, और इन नक़ली यूनिवर्सिटियो की असल

अब योरप जाकर देखने को मिलेगी।

कारीगरी की चीज़ो मे चमड़े के मनीवेग, जिन पर प्राचीन मिस्र की तसवीरे बनी रहती हैं, पत्थर के पिरैमिड, पुराने नमूने के ज़ेवर तथा इत्र यहाँ की प्रसिद्ध वस्तुएँ गिनी जाती हैं। हम लोगों ने भी दो-एक चीज़े नमूने के लिये ख़रीदीं। फेरीवाले, ख़ासकर तसवीरो और सिगरेट के वेचनेवाले, तथा दुकानदार बाहरवाला समझकर बहुत पीछा करते हैं। जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती है। सौदे में झूठ भी बेइंतिहा वोला जाता है। दस-बारह घटे मे मुझे जो दिखलाई पड़ा, उसका संक्षिप्त विवरण मैने ऊपर दिया है। यों मिस्र का इतिहास और विस्तृत वृत्तात तो किसी भी विश्वकोष मे मिल जायगा। इस चौबीस घटे की यात्रा मे १००) ख़र्च हो गए। ८०) तो 'इटैलियन एक्सप्रेस' ने ही ले लिए, और २०) सामान वग़ैरह ख़रीदने मे ख़र्च हो गए। इतना कहने को अवश्य हो गया कि हमने मिस्र देश भी देखा है।

आज से हम लोग योरप पहुँच गए हैं। उसका स्पष्ट चिह्न यह है कि हवा पहाड़ की तरह कुछ-कुछ ठडी हो चली है। सब लोगों ने गरम कपड़े निकाल लिए हैं, और घमाने के लिये डेक के एक हिस्से का पाल हटा दिया गया है। समुद्र और आसमान तो वही एकसाँ हैं।

बुधवार

आज दसहरा है। तीन-चार दिन से यहाँ हिंदुस्तानियों के बीच में चर्चा थी कि इस अवसर पर कुछ उत्सव होना चाहिए। हम लोगों के क्लास में एक बंगाली विद्यार्थी हैं, जिनकी शक्ल, चाल-ढाल तथा दिमाग़ हमारी यूनिवर्सिटी के एक बड़े प्रोफेसर की टक्कर का है। बात उनसे ही शुरू हुई। बंगालियों की कदाचित् इच्छा थी कि दुर्गा-पूजा के दिन उत्सव हो, और चदा सबसे वसूल हो जाय, किंतु हम लोगों ने दसहरे के दिन ही उत्सव रखवाया। इसका नाम भी वे लोग 'इडियन ऑटम फेस्टिवल' रखवाना चाहते थे, लेकिन अंत में, बड़ी मुश्किल से, 'दसहरा फेस्टिवल' ही नाम रहा। हरएक दर्जे के लगभग सभी

१४. काफीघर—कैरो

१५. प्राचीन विद्यापीठ—कैरो

भारतीय शामिल हुए। प्रोग्राम था तीसरे पहर चार बजे चाय, आर्चेस्ट्रा, एक-दो बगाली और हिंदी गाने, एक-दो छोटे-छोटे व्याख्यान और फोटो।

हम लोगो की लबी यात्रा का अत हो आया है, सकुशल पहुँचने की सूचना पहले ही मिल चुकी होगी। कल सुबह ७ बजे जहाज़ नेपिल्स पहुँच जायगा, और वहाँ से २ बजे चलेगा। 'पपिआई' घूमने जाने का विचार है। परसों सुबह हम लोग जेनेवा पहुँच जायँगे। आज समुद्र कुछ उथल-पुथल हो रहा है, इससे कुछ लोग फिर गिरे-पड़े हो रहे हैं। सफर काफी लबा है। तबियत ऊब जाती है। पेरिस पहुँचकर खाने का कुछ विशेष प्रबध मुझे करना पड़ेगा। घर का समाचार कुछ नही मिला। शायद पेरिस पहुँचकर कुछ हाल मिले। घर पर आज दसहरे के दिन मेरी याद ज़रूर की गई होगी।

१७-१०-१९३४

३—योरप से पहला पत्र

परसो सुबह ७ बजे जहाज़ नेपिल्स पहुँचा था। यह शहर एक अर्द्धचंद्राकार पहाड़ी पर बसा है, अतः समुद्र से देखने में कुछ वैसा ही लगता है, जैसा नाव से काशी का दृश्य। काशी छोटी है, यह शहर बड़ा है। पहाड़ी पर होने से नैनीताल की तरह क़रीब-क़रीब समस्त मकान दिखाई पड़ते हैं। इधर के सब शहर कलकत्ता-बंबई के नमूने के हैं, या यों कहिए, कलकत्ता-बंबई पश्चिम के शहरो के ढग के हैं—चार-पाँच मंज़िले बद मकान, चौड़ी सड़के, ट्रैम, दौड़धूप।

हम लोग पुराना नेपिल्स या पंपिआई देखने गए थे, जो पहली शताब्दी ईसवी में बिसूवियस ज्वालामुखी पहाड़ के कारण नष्ट हो गया था। यह स्थान क़रीब १५-२० मील दूर होगा। फी आदमी ६) के क़रीब मोटर आदि का किराया लगा। सारे शहर के खँडहर, दीवारे और सड़के खोदकर ठीक हालत मे कर दी गई हैं। कुछ-कुछ चित्तौड़ मे घूमने का स्मरण हो आता था। अंतर इतना था कि यहाँ की गवर्नमेंट के द्वारा यहाँ बहुत ही अच्छा प्रबध था। इन स्थानों से यहाँ की गवर्नमेंट को ख़ासी आमदनी हो जाती है। बिसूवियस पहाड़ का दृश्य नेपिल्स, पपिआई, हर जगह से दिखाई पड़ता है। उसके ऊपर तक भी जाने का प्रबंध है, लेकिन समय न होने के कारण हम लोग नहीं जा सके।

पंपिआई जाते हुए एक-दो पड़ोस के क़स्बो से भी गुज़रना हुआ। ग़रीब आदमी यहाँ भी काफी हैं, और गदे तो बहुत ही रहते हैं। सिगरेट हर आदमी माँगता था। बिस्कुट वग़ैरह भी दो तो भूखो की तरह लेकर खाने लगेंगे। क़स्बो मे एक घोड़ा या गदहा जुता हुआ ठेला बहुत चलता है। मिस्र में भी मैंने ऐसे ही ठेले देखे थे, लेकिन वहाँ सिर्फ गदहे ही जुते थे। इन पर ग़रीब आदमी चढ़ते भी हैं। ख़ुशहाल आदमी एक घोड़ेवाली फिटन पर चलते हैं। दो बजे जहाज़ नेपिल्स से चल दिया था।
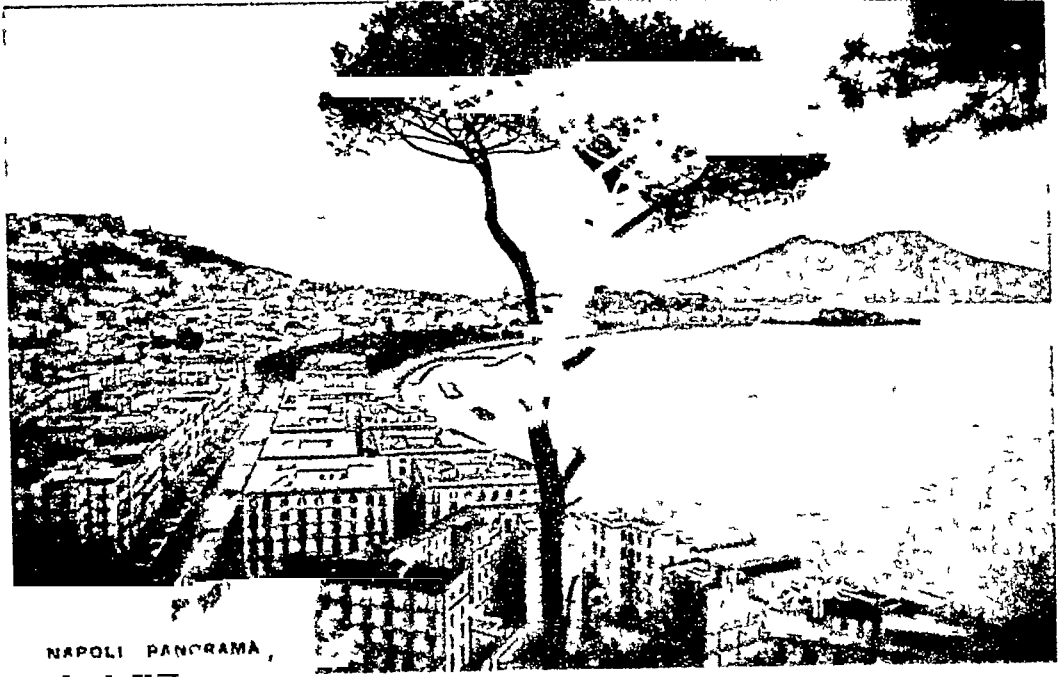
१६. नेपिल्स

१७. विस्यूवियस
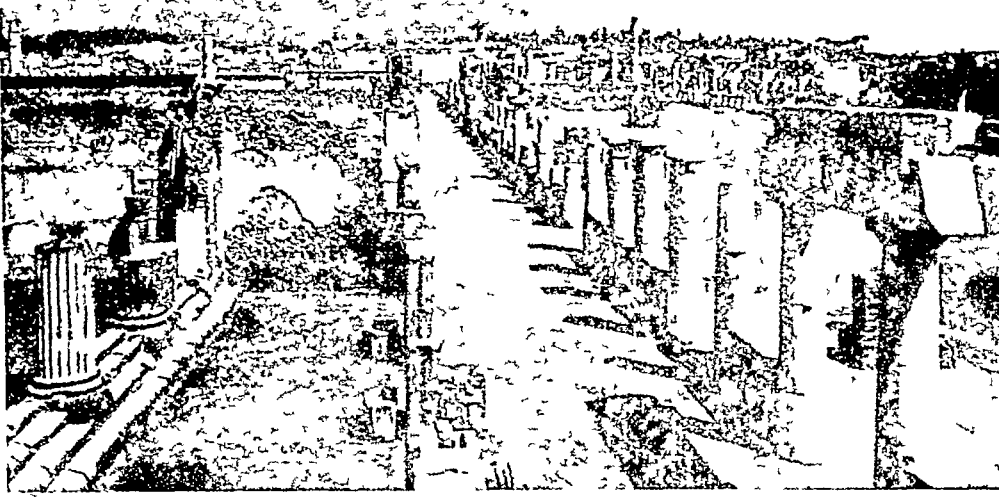
१८. पपिश्राई के खँडहरों का एक दृश्य
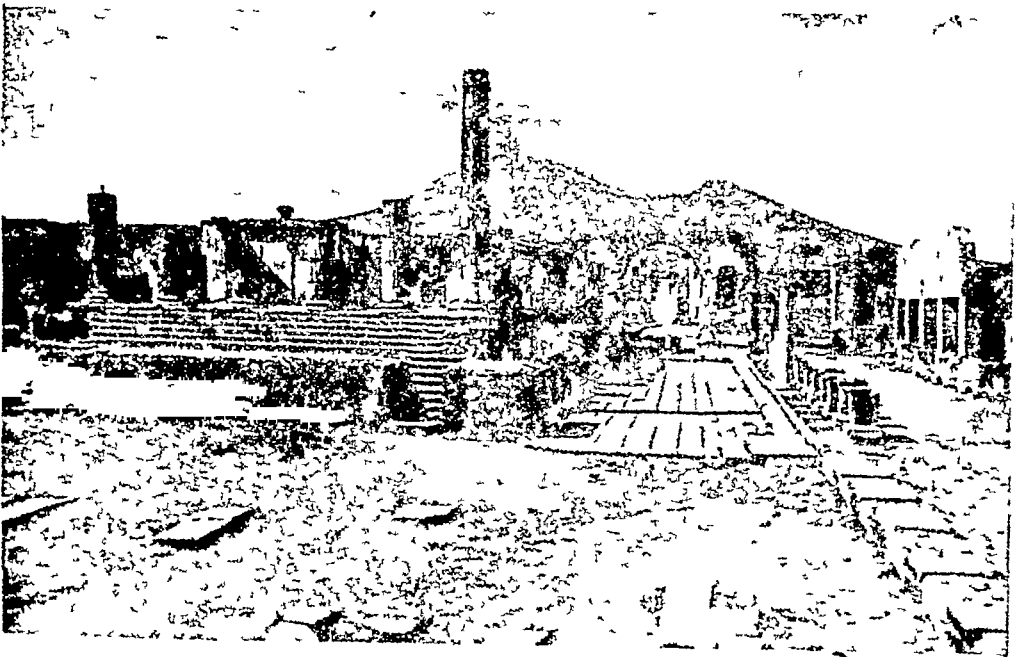
१९. पपिश्राई के खँडहरों का दूसरा दृश्य

नेपिल्स से जेनेवा तक रात-भर का सफर था, लेकिन समुद्र मे लहरे इतनी तेज़ थीं कि आधे से ज्यादा आदमी लेटे ही रहे। छः आदमियों के खाने की मेज़ पर मै ही अकेला रात को पहुँचा था। बहुत-सी मेज़े तो बिलकुल ख़ाली थीं।

कल सुबह ७ बजे हम लोग जेनेवा पहुँचे। बदरगाह और शहर वैसा ही पाया, जैसा यहाँ हर जगह है। ११½ बजे सुबह की रेल से हम लोग पेरिस को रवाना हुए। रेल ट्यूरिन मे बदलनी पड़ी। योरप का यह भाग बिलकुल पहाड़ी है, मानो नैनीताल आप मोटर के बजाय रेल पर जा रहे हो। लेकिन बीच बीच मे समतल भूमि भी काफी है, जिस पर खेती होती है, और जहाँ-तहाँ मकान बने हुए हैं। मौसम भी ठीक नैनीताल का-सा ही है। हम लोगों ने सेकिंड क्लास का टिकट लिया था। अतः ख़ूब आराम से सोते हुए आए।

आज सुबह हम लोग पेरिस सकुशल पहुँच गए। पेरिस बहुत बड़ा शहर है। बोली हम लोग समझते नही, इसलिये हर एक बात की जानकारी धीरे-धीरे हो रही है। इस होटल मे ६-७ भारतीय, विशेषतया बगाली, विद्यार्थी हैं। इनसे मदद ज़रा कम ही मिलती है। एक गुजराती चतुर विद्यार्थी हैं। उनसे कुछ अधिक सहायता मिल जाती है। ये लोग ख़ुद अलग रहना चाहते हैं, और हम लोग भी अधिक मेल नही बढाना चाहते। यहाँ की नौकरनी अँगरेज़ी भी बोल लेती है, यह सुबीता है। कमरे का अभी हम लोग ७०) (३५० फ्रैंक, ५ फ्रैंक = १)) महीना दे रहे हैं। खाने का २)-२॥) रुपया रोज़ पड़ जाता है। धुलाई, सवारी, डाक आदि का अलग ख़ासा ख़र्च होगा। अभी यह सिलसिला शुरू नही हुआ है। खाने का अब मुझे यहाँ कोई कष्ट नही रहा। रूस से भागे हुए लोगो ने यहाँ कुछ शाकाहारी रेस्टराँ तथा अन्य खाने की दुकाने खोल रक्खी हैं। मुझे एक रूसी शाकाहारी रेस्टराँ मिल गया है, जो काफी आराम का है।

मौसम, जब से हम लोग आये हैं, बहुत अच्छा नहीं रहा है। धूप शायद ही कभी निकलती हो। बादल रहते हैं, और दिन मे कुछ देर झला पड़ जाता

है। ठंड बिलकुल पहाड़ की-सी है, लेकिन ठिठुरन नहीं है। यहाँ इस मौसम में सब काम होता रहता है। लोग बरसाती या ओवरकोट पहनकर निकलते हैं। इतना पानी नही बरसता कि छाते की ज़रूरत हो। सुनते हैं, लंदन में कोहरा और धुआँ यहाँ से विशेष रहता है। ठिठुरन का जाड़ा तो जनवरी-फ़रवरी में जाकर पड़ता है।

शहर वास्तव मे बहुत बड़ा है। कलकत्ते के इस्प्लानेड के ढंग का समझिये, लेकिन उससे बीस गुना बड़ा। मोटर, बस, ट्रैम तथा सुरंगी रेलें हर वक्त़ दौड़ती रहती हैं, और आदमियों का ताँता अलग लगा रहता है। पेरिस लगभग बीस मोहल्लों में बँटा हुआ है। हम लोगों का मोहल्ला नं० ५ है। यह यहाँ का कटरा-कर्नलगज अर्थात् यूनिवर्सिटीवाला हिस्सा समझिये। यह गली भी यहाँ की बैक-रोड-सी है। इस पर दौड़-धूप बिलकुल नहीं है। यूनिवर्सिटी की इमारतें यहाँ भी पिछवाड़े ही हैं। खाना यहाँ सब लोग रेस्टराँ में खाते हैं। कैरो की तरह दुकानो के अदर या बाहर कुर्सियों पर बैठे खाया करते हैं। काफी 'कैफे' में पीते हैं। शाम के बाद बिजली की छटा मे यहाँ सबसे ज्यादा रौनक़ रहती है। बख़्शीश का, जो लगभग १० प्रतिशत दी जाती है, यहाँ बड़ा रिवाज है। हर जगह बख़्शीश देनी होती है—रेस्टराँ में, कैफे में, टैक्सीवाले को, बाइस्कोप मे। अभी तो शहर की भिन्न-भिन्न जगहों की जानकारी मे ही सारा वक्त़ निकल जाता है।

सर्दी यहाँ अभी बहुत तेज़ नही हुई है। पहली नवंबर से कमरे गर्म किए जाने लगेंगे, अतः कमरो मे तो बिलकुल ठड नही मालूम होगी। बाहर पूरे कपड़े पहनकर निकला जाता है। सूर्यनारायण के दर्शन दस-पाँच दिन में किसी वक्त़ ज़रा देर को हो जाते हैं। यहाँ के मौसम का अनुभव होने पर ही समझ में आ सकता है कि योरप मे सूट पहनना, चाय पीना, गोश्त खाना, काग़ज़ से शौच करना, देर मे सोकर उठना, बिना बराडे या आँगन के मकान बनाना, बूटजूता पहनना आदि क्यों प्रचलित हुआ। अपने देश के मौसम में इनसे

०. पेरिस—सेन
दी तथा नगर
का दृश्य
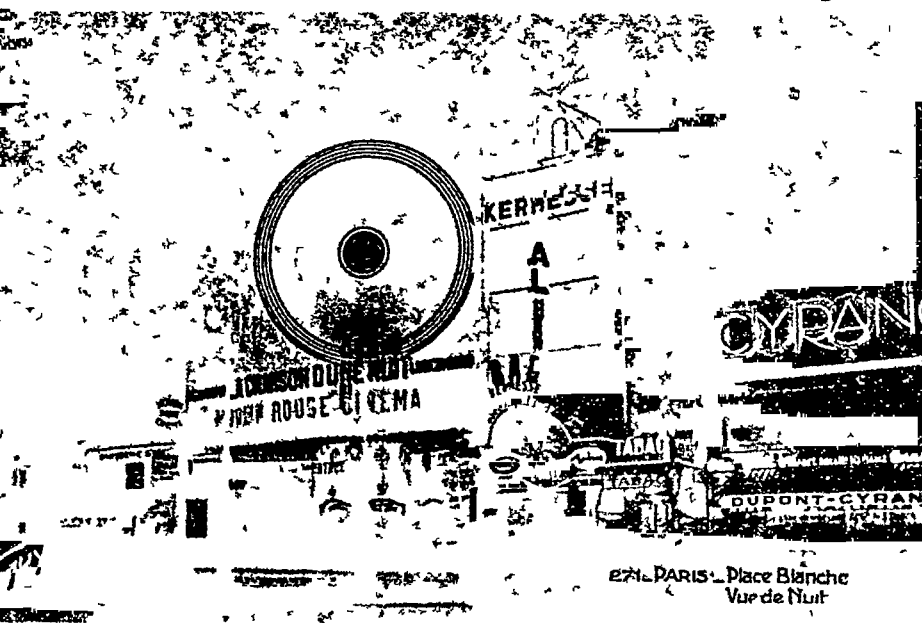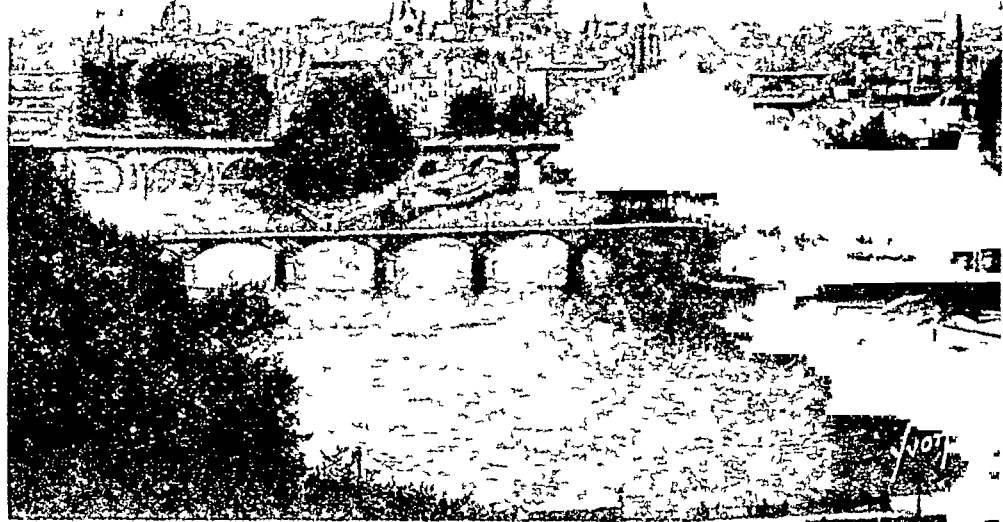
२१ पेरिस—रात्रि के समय बाज़ार मे बिजली की रोशनी का एक दृश्य

२. शाकाहारी
सी रेस्टरां के
अन्दर का
दृश्य—पेरिस
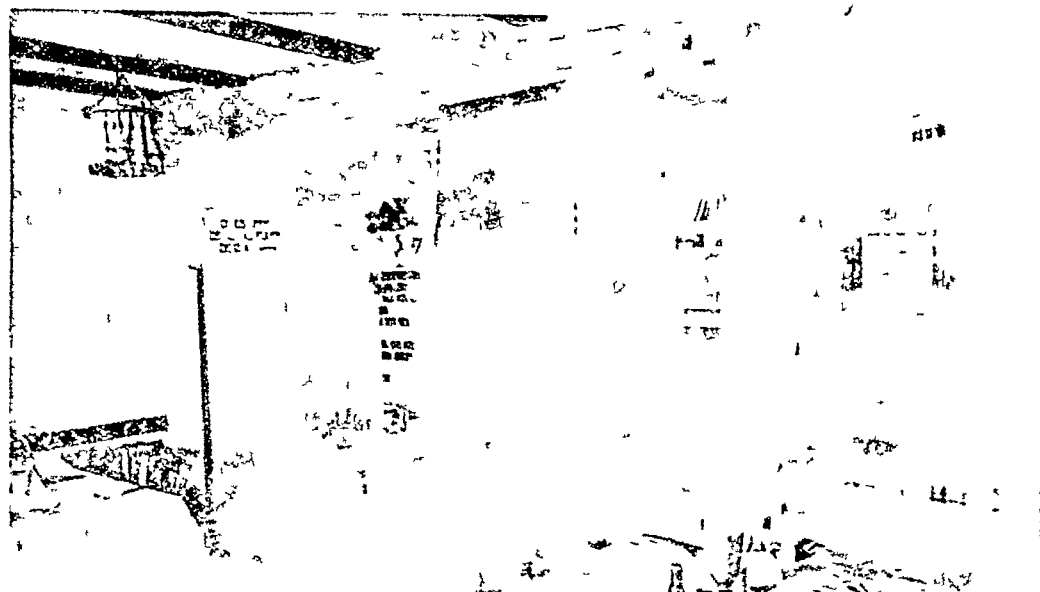
उलटे रिवाज हैं, और रहने चाहिए। यहाँ फ़ास मे हर चीज़ फ़ास के चारों ओर घूमती है—तिजारत, पढाई, खेल-तमाशे, राजनीति, इतिहास, धर्म। अन्य किसी दृष्टि से ये लोग सोच ही नही पाते।

विश्वेश्वर तथा नैथानी लंदन चले गए हैं, किंतु उन्हें एक दिन मे बुलाया या उनके पास जाया जा सकता है। यहाँ से ८½ बजे सुबह रेल जाती है, और शाम को ६ बजे लदन पहुँच जाती है। किराया तीसरे दर्जे का, एक तरफ़ का, २०) के लगभग है। अब तो शायद प्रोग्राम बँधा-सा चलेगा। सुबह दो-तीन घटे पढाई, १२ बजे खाना खाने के बाद किसी-न-किसी लेक्चर मे जाना या लाइब्रेरी आदि मे काम और रात को एक-दो घंटे फ़्रेंच का अभ्यास। भाषा की यहाँ कठिनाई बड़ी भारी है। ३६) रुपए महीने पर, एक महीने को, एक घटा रोज़ के लिये, मैंने एक मास्टर ठीक किये हैं, और कल से उनके पास जाने लगा हूँ। यहाँ कुछ गुजराती व्यापारी रहते हैं। बुधवार ७ नवबर को ४ बजे शाम को, दिवाली के उपलक्ष्य मे, उन्होंने समस्त भारतीयों को चाय पर बुलाया है। वही दिवाली मनाई जायगी। इसका हाल अगले पत्र मे लिखूँगा। उसी पत्र मे पेरिस का भी विस्तृत हाल लिखूँगा।

पेरिस

शनिवार, २०-१०-१९३४

४—पेरिस से पहला विस्तृत पत्र

पिछले पत्र मे मैंने लिखा था कि बुधवार ७ नवंबर को यहाँ दिवाली मनाई जानेवाली है। पेरिस मे गुजरात के क़रीब ३०-४० व्यापारी मोती की तिजारत के सिलसिले मे रहते हैं। इन्होने एक होटल मे उस दिन शाम को ४ बजे चाय दी थी, और उसमे समस्त भारतीयो को आमत्रित किया था। क़रीब ६०-७० भारतीय एकत्र हुए थे। किंतु मालूम नही होता था कि वे भारतीय हैं—ॲगरेज़ी लिबास, ॲगरेज़ी खाना, ॲगरेज़ी मे बातचीत। 'विक्टोरिया' जहाज़ पर के दशहरे का ही यह दूसरा रूप था। गुजराती व्यापारियो की ओर से व्याख्यान अवश्य टूटी-फूटी हिंदी मे हुए। प्रोफ़ेसर सिलवै लेवी भी सपत्नीक मौजूद थे। प्रोग्राम में एक द्राविड़ सज्जन के नाच—सँपेरे का नाच, पहलवान का नाच आदि तथा एक अहमदाबाद के गवैए का गाना था। जो हो, दिवालीपन इस उत्सव में बिलकुल नही था, वैसे शाम अच्छी कट गई।

एक दिन 'लूव्र' का अजायबघर देखने चला गया था। यह प्राचीन मूर्तियो और विशाल चित्रों का बहुत बड़ा सग्रह है। अच्छी तरह देखने को एक हफ़्ता चाहिए। एक घटे मे हम लोग पूरी इमारत मे चक्कर भी नही लगा सके। एक बार 'वारसाई' के पुराने महल—यहाँ की फतेहपुर सीकरी या आमेर—देखने गया था। इमारत तो बहुत सुंदर नही है, सिर्फ दुमज़िला है, किंतु नेपोलियन के युद्धो तथा कुछ अन्य पुराने युद्धों के चित्रो का सग्रह यहाँ बहुत अच्छा है। विशेष सुदर तो महल का बाग़ तथा झील है। तालाबो, फव्वारो और मूर्तियों के कारण इस स्थान की सुदरता और भी बढ गई है। कुछ दूर पर एक बाग़ मे छोटा-सा मकान है। इसमे फ़्रास के बादशाह जाकर कभी-कभी रहा करते थे। मकान का मुँह एक जंगल की तरफ है। एक दूसरे मकान में पुरानी घोड़ा-गाड़ियों का सग्रह है, जिन पर बादशाह लोग चढकर निकला करते थे। 'वारसाई' पेरिस से ६
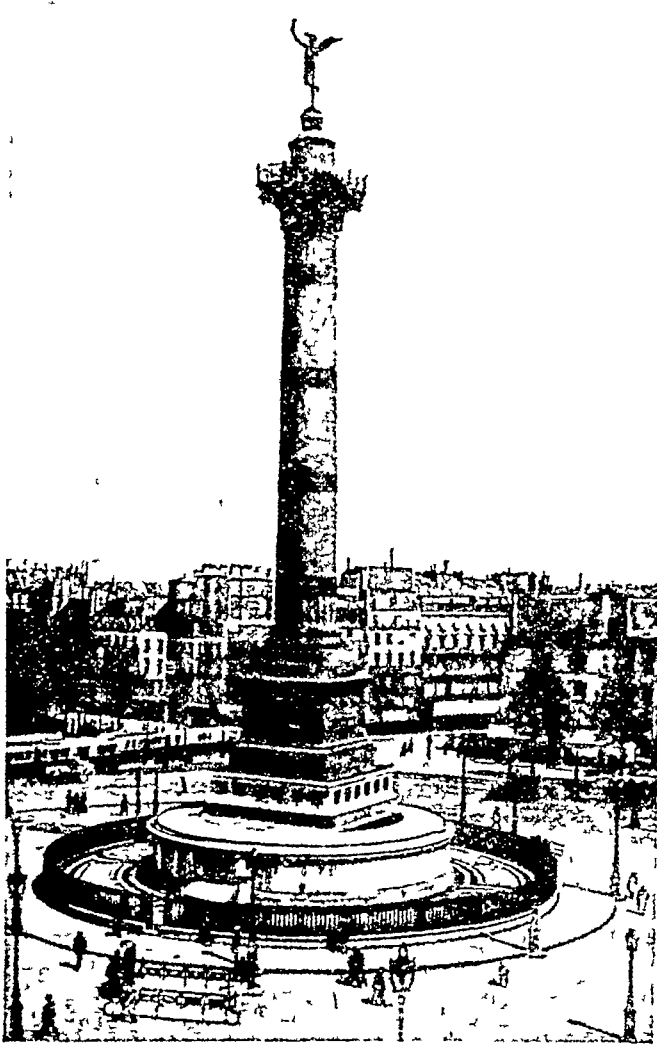
२३. विद्रोह का स्मारक स्थान—पेरिस
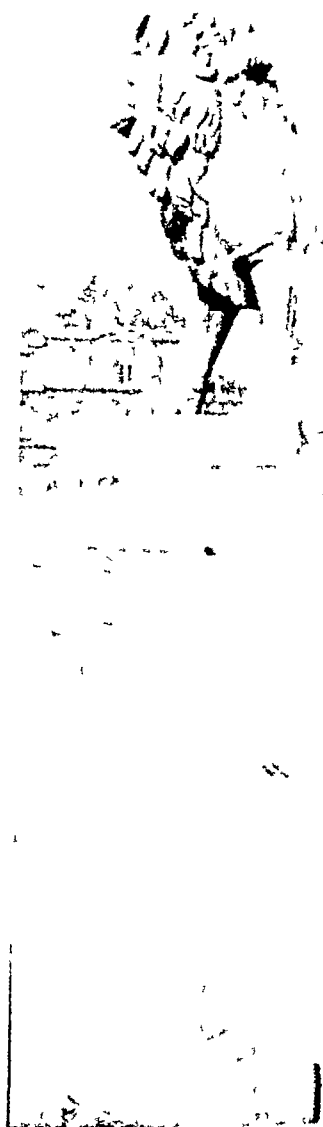
२५. लग्ज़ेम्बर्ग के पा

२४. लूव्र का महल जो अब अजायबघर है—पेरिस
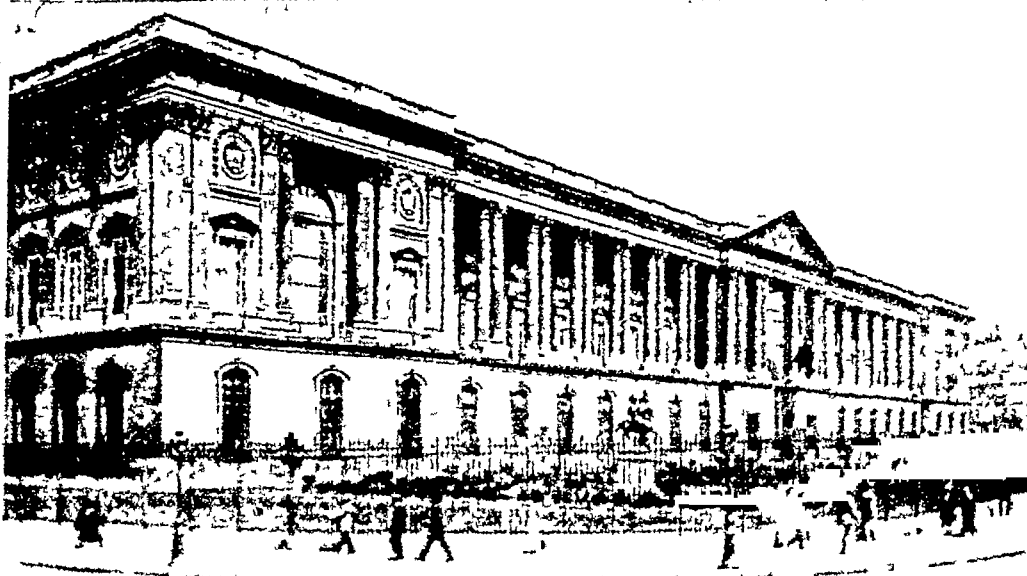
मे लेखक—पेरिस
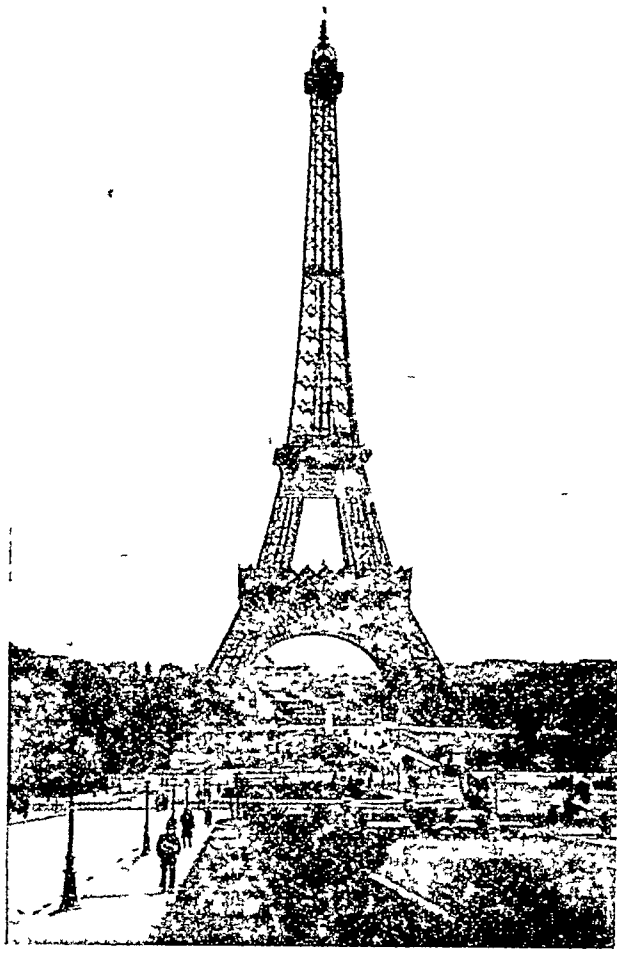
२६. ससार की सबसे ऊँची प्रसिद्ध लोहे की मीनार
'एफेल टावर'—पेरिस

२७. आपरा-गृह—पेरिस
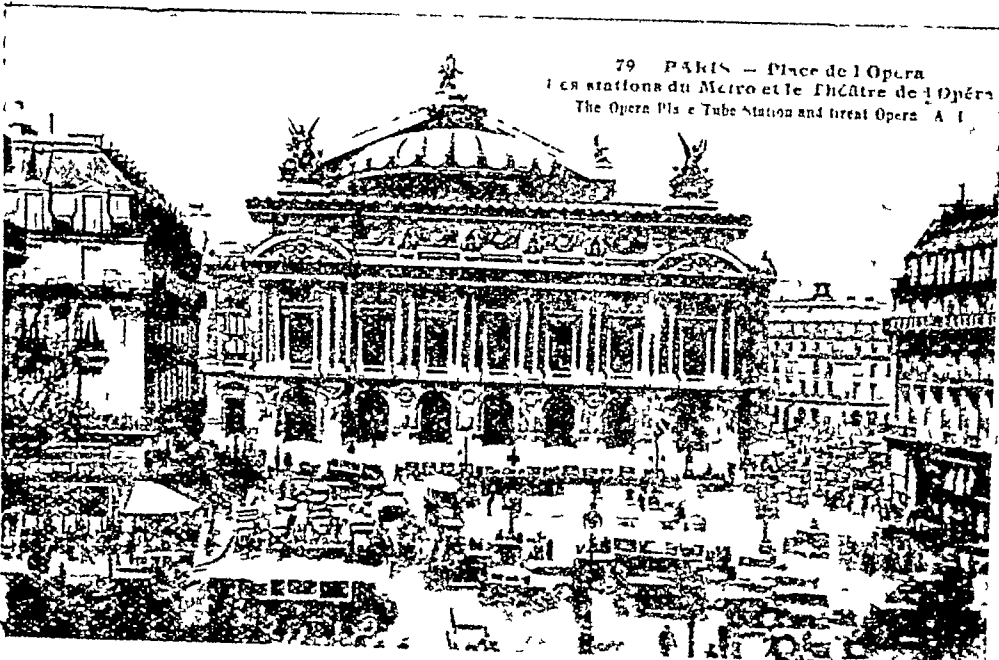
मील है, और घूमने मे लगभग पूरा दिन लग जाता है। कल शाम 'शाँ एलीज़े'—यहाँ का हज़रतगज—घूमने गया था। हज़रतगज से सैकड़ोगुना विशाल दृश्य था। कल 'सै डेनिस' देखने स्कूल की पार्टी जा रही है। यहाँ फ्राँस के पुराने बादशाहो की छतरियाँ हैं। यह गिरजाघर यहाँ से ५ मील पर है। इन सब स्थानो पर स्कूल का एक 'गाइड' साथ जाता है, जो फ्रासीसी मे सब बाते समझाता है। इस तरह घूमने के साथ-साथ भाषा का अभ्यास भी बढ़ता है। पेरिस के अन्य प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान आपरागृह, एफेल टावर, नेपोलियन की क़ब्र, फ्रास के विद्रोह का स्मारक, तथा दर्जनो अजायबघर हैं। धीरे-धीरे इन्हे देखने जाने का विचार है।

यहाँ के असली शहर की एक-दो बड़ी दुकानो मे इस हफ़्ते जाना हुआ। एक दुकान पाँच मज़िल की इतनी जगह मे है, जितनी मे इलाहाबाद मे घटाघर से ग्राड ट्रक रोड तक का चौक का हिस्सा है। आवश्यकता की सभी चीज़े—हीरे से लेकर सुई तक—यहाँ मिल सकती हैं।

इस सप्ताह देशी खाना कई बार बना। एक शाम को मादाम मोराँ ने आमत्रित किया था। यह एक फ़्रासीसी महिला हैं, जो भारतीय सस्कृति से अनुराग रखती हैं। गत वर्ष यह भारत भी घूमने गई थी, तथा कुछ दिनों इलाहाबाद मे, डॉ० सप्रू के यहाँ ठहरी थी। इन्होने अपने हाथ से दाल-चावल और आलू-बैगन बनाए थे, और साड़ी पहनकर खाना खिलाया। इनके मकान पर पहुँचकर कुछ समय के लिये आदमी भूल जाता है कि वह पेरिस मे है या भारत मे।

फ़्रास मे दो महीने से अधिक रहनेवाले के लिये पुलिस से एक कार्ड लेना पड़ता है। विद्यार्थियो को २४ तथा अन्य लोगो को १०० फ़्रैक (५ फ्रैक = १ रुपया) फीस देनी पड़ती है। मैने कार्ड ले लिया है।

१६ दिसबर को यहाँ फिरदौसी की एक हज़ार वर्षवाली वर्ष-गाँठ मनाई गई थी। उत्सव यूनिवर्सिटी के बड़े हॉल मे हुआ था। यह हॉल पेरिस के बहुत

बड़े हॉलो मे से एक है। सेनेट हॉल से कुछ बड़ा होगा, लेकिन बैठने का प्रबंध अर्द्धचंद्राकार ढंग से, ऊपर से नीचे तक, कई मंज़िलो मे, ऐसा सुंदर है कि सबको देखने-सुनने का सुबीता रहता है। उत्सव मे रिपब्लिक के प्रेसीडेंट भी मौजूद थे, इसलिये हॉल मे ६-७ सिपाही भी तैनात थे। तीन-चार लिखित व्याख्यान फ़ासीसी में हुए, तथा बैंड पर फारसी गानो की दो-तीन गते सुनाई गई। ईरान के एलची लदन से यहाँ इस उत्सव मे भाग लेने के लिये आए थे। उत्सव रात मे ९ से ११ तक हुआ था। उस दिन पता चला कि पेरिस मे लगभग ६०० ईरानी विद्यार्थी पढ़ते हैं, और चीनी विद्यार्थियों की संख्या तो २००० के लगभग है।

इस होटल मे अब हम लोग चार भारतीय विद्यार्थी हैं—मि० केसकर (मराठा), मि० मेवाड़ (गुजराती), डॉ० बोस (बगाली) और मै (हिंदी)। हम लोगो को छोड़कर पेरिस-यूनिवर्सिटी में ५-६ और भारतीय विद्यार्थी हैं। वे सब बगाली हैं—एक को छोड़कर, जो मद्रास के नए वकील हैं। ये लोग यूनिवर्सिटी-होस्टल मे रहते हैं। एक दिन इन लोगो के साथ इनके यूनिवर्सिटी-होस्टल के मेस में खाना खाने गया था। हरएक विद्यार्थी अपने हाथ से एक अलमूनियम की थाली में गिलास, छुरी, काँटा रख लेता है, तथा मेज़ों पर से चुनी हुई परसी-परसाई रक़ाबियो को छाँटकर तथा क्लर्क को दिखलाकर उतने सामान की क़ीमत का टिकट ले लेता है, और तब 'हॉल' मे मेज़-कुर्सी पर जाकर खाता है। खाने के बाद विद्यार्थी थाली आदि धुलने की जगह जाने के लिये एक खिड़की पर दे देता है, तथा टिकट दिखाकर दाम देकर चला आता है। इस मेस का खाना अच्छा होता है, और सस्ता भी। 'हॉल' में कई सौ विद्यार्थी साथ बैठकर खाना खा सकते हैं।

एक दिन मि० केसकर के साथ यहाँ के अल्फ़्रेडपार्क 'ब्वा दे बूलोय्यँ' (बूलोय्यॅ के जगल) गया था। इलाहाबाद के पार्क से २५-३० गुना बड़ा होगा। पार्क के सिवा उसमे दो घुड़दौड़ के मैदान, एक चिड़िया-घर, दो बड़ी झीलें
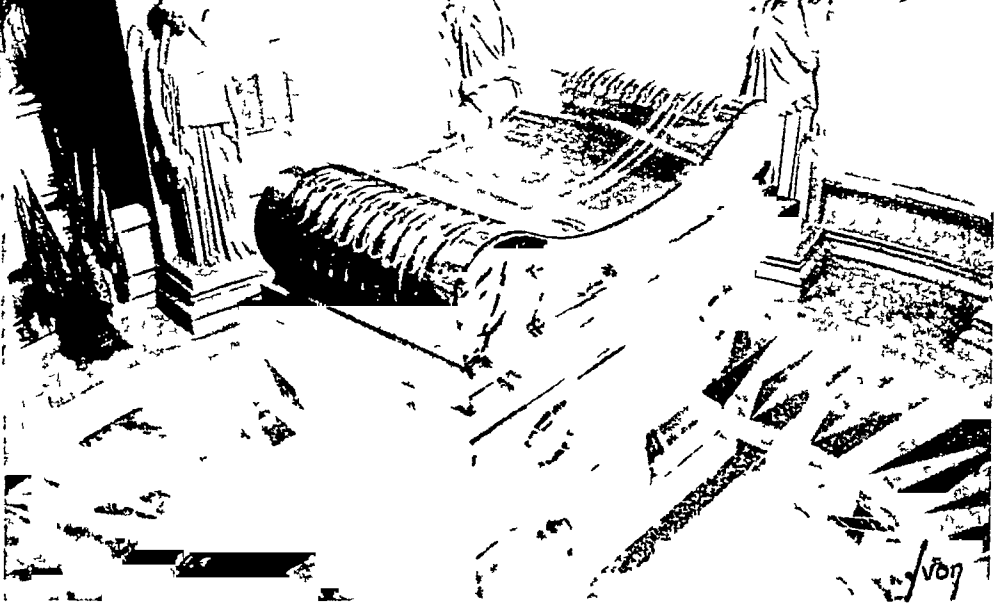
२८. नैपोलियन की क़ब्र—पेरिस

२९. मादाम मोराँ अपने पुत्र के साथ

३०. सेन नदी के किनारे पुरानी किताबे वेचनें वाले कबाड़ियो की दूकाने—पेरिस

और बहुत बड़ा जंगल है। गर्मियों में अवश्य स्थान रमणीक रहता होगा।

मै बड़े दिन पर यहाँ ही रह रहा हूँ। जाड़े मे बाहर जाने से तकलीफ ही होती है। बड़े दिन पर एशिया के विद्यार्थियों की यहाँ कई कान्फ्रेंसे हैं। लेकिन इन सबका अदरूनी हाल बड़ा विचित्र है—किसी को इटली और किसी को जर्मनी करवाती है, जिससे इन देशों के प्रति एशिया के विद्यार्थियों की सहानुभूति उत्पन्न हो सके। ब्रिटिश गवर्नमेंट इस तरह की कान्फ्रेंसों से स्वाभाविक रीति से चिढती है। यहाँ फ्रास मे बड़े दिन पर ७-८ दिन की ही छुट्टी होती है। इगलैंड में तो एक महीने की होती है। फ्रास तथा अन्य रोमन-कैथलिक देशों में 'क्रिसमस' के बजाय 'न्यू इयर्स डे' पर अधिक उत्सव मनाया जाता है। दिवाली-दशहरे की-सी चहल-पहल दिसबर के शुरू से ही नज़र आने लगती है।

योरप की राजनीतिक परिस्थिति डाँवाडोल है। अगला युद्ध निश्चित समझिए। सिर्फ समय का प्रश्न है। अभी कोई भी पार्टी तैयार नहीं हो पाई है। इसी की देर है। पूरे यत्न के साथ तैयारी हो रही है। यहाँ के लोगों के सिर पर अगला युद्ध ऐसा भूत की तरह सवार है कि लोग चाहते हैं कि जो कुछ होना हो झटपट होकर निपट जाय। इस सदेह की अवस्था के कष्ट की अपेक्षा मरने को लोग तैयार हैं। मेरे अदाज़ से चार-पाँच साल से पहले युद्ध न हो सकेगा।

यहाँ एक दिन डॉक्टरी के लड़कों ने हड़ताल कर दी थी। अपने देश के लड़कों की तरह ही हुल्लड़ मचाते थे। कोई और विशेष बात नहीं है। सबसे यथायोग्य कहिएगा।

दिसंबर, १९३४

५—पेरिस से दूसरा पत्र

यहाँ पिछले हफ्ते अच्छा जाड़ा पड़ा। पहिली बार ख़ूब बर्फ पड़ी, और उसके बाद टेपरेचर ज़ीरो के निकट रहने की वजह से दो-तीन दिन तक नही पिघली। सड़को की बर्फ तो फौरन हटा दी जाती है, छतो और मकानो के किनारो पर अवश्य पड़ी रह जाती है। सुनते हैं, यहाँ पेरिस मे ऐसे ही दो-चार दिन को तेज़ ठड पड़ती है। फरवरी मे शायद एक-दो बार ठड बढ़ेगी, इसके बाद मार्च से मौसम बदलने लगेगा। २१ मार्च से यहाँ वसत का आरभ माना जाता है। ठड की यहाँ धीरे-धीरे आदत हो जाती है। साधारणतया जाड़ो मे यहाँ टेपरेचर ४० डिगरी के लगभग रहता है। 'लीडर' के अनुसार इलाहाबाद मे आजकल ६० डिगरी के लगभग टेपरेचर है। ३२ डिगरी पर बर्फ जमती है। ४० डिगरी तक तो मुझे अब मालूम भी नही होता। ३२ डिगरी के निकट का टेपरेचर बाहर निकलने पर नाक-कान को ज़रूर तकलीफ़ देता है। बाहर कितना भी टेपरेचर हो, मकान के अदर कुछ पता नही चलता।

एक दिन मि० केसकर के साथ, बनावटी बर्फ के फील्ड पर, पैरो मे पहिये बाँधकर, हाकी के खेल का तमाशा देखने गया था। खेलनेवाले बहुत तेज़ी से ररककर दौड़ते हैं। हज़ारो आदमियो के बैठने का हॉल होगा। स्विटज़रलैड और कनाडा मे यह खेल स्वाभाविक है। यहाँ बनावटी ढग से बर्फ जमाकर बद हॉल मे खेला जाता है। पिछले हफ्ते यहाँ 'इडियन इस्टिट्यूट' मे चाय थी। बिना तवालत का इतज़ाम यहाँ रहता है। क़रीब १०० आदमी आमन्त्रित थे। एक भी नौकर प्रबध को नही था। एक मेज़ के पास कुछ स्त्रियाँ खड़ी हो गई, और आमत्रित लोग ख़ुद जाकर अपना चाय का प्याला ले लेते थे और मेज़ पर रक्खी हुई तश्तरियों से चुनकर खाने की चीज़े उठाकर खाते जाते थे। बैठने का भी इंतज़ाम न था। अपने यहाँ कुछ तो नक़ल

हिंदोस्तान के अँगरेज़ों की हम लोग करते हैं, और कुछ पुरानी अमीरी की आदतें चली जा रही हैं।

जनवरी के पहले सप्ताह मे एक दिन महाराज बड़ौदा से मिलने गया था। प्रो० लेवी ने उनसे मेरा ज़िक्र किया था, अतः उन्होंने मिलने की इच्छा प्रकट की, और मुझे तीसरे पहर चाय पर बुला भेजा। क़रीब डेढ़ घंटे बातचीत होती रही। प्रो० लेवी ने उनसे शायद दो बातो का ज़िक्र किया था—बड़ौदा मे एक एकेडेमी या विद्यापीठ क़ायम करने का, तथा रियासत की ओर से योरप विद्यार्थी पढ़ने भेजने का। ज़्यादातर इन्ही विषयो पर परामर्श होता रहा। भारत पहुँचने पर बड़ौदा आकर परिस्थिति का अध्ययन करने के लिये उन्होंने मुझसे अनुरोध किया है। हिंदी-उर्दू तथा हिंदी-गुजराती आदि के विषय मे भी बातचीत होती रही। महाराज बड़ौदा अब काफी बुड्ढे हो गये हैं, लेकिन योरप की प्रथा के अनुसार बुढापे को भुलाये रखना चाहते हैं। विचारो मे भी बहुत ढीले अथवा उदार हो गए हैं। कहते थे, भाषा का उद्देश्य विचार प्रकट करना मात्र है, जिस भी भाषा के द्वारा सुबीते से हो सके। उनकी समझ मे उनकी रियासत मे मराठी, गुजराती तथा हिंदी, ये तीन भाषाएँ व्यर्थ हैं। कहते थे, मै तो गुजराती और मराठी को अभी हटा दूँ लेकिन मै जानता हूँ कि नासमझ जनता इसका विरोध करेगी क्योंकि वह इस ऊँचे ख़याल तक नही पहुँच सकती। उनके चारों तरफ़ जो आदमी थे, वे बिलकुल दरबारी ढंग के थे। एक चतुर अमेरिकन भी थे, जो मुझसे बाद को बहुत देर बातचीत करते रहे। महाराज बड़ौदा यहाँ अमीरी आरामतलबी की ज़िंदगी बसर करते हैं। यो व्यवहार तथा बातचीत मे बहुत शिष्टता से पेश आए।

यहाँ पेरिस मे आजकल चुंगी का चुनाव हो रहा है। मोहल्ले-मोहल्ले, जगह-जगह 'वार्डों' की तादाद के हिसाब से लकड़ी के बोर्ड लगा दिए गए हैं, जिन पर 'वार्डों' के नंबर पड़े हैं। अलग-अलग 'वार्डों' से खड़े होनेवाले लोगो के 'मैनीफेस्टो' अपने-अपने बोर्डों पर लगे हैं। ये 'मैनीफ़ेस्टो' बड़े

मनोरंजक हैं। एक पर फ्रांस का नक़्शा है जिसमें जर्मनी की फौजें, तोपें और टैंक फ्रांस की तरफ चले आ रहे हैं और नीचे लिखा है, ऐसे आदमी को चुनकर भेजो जो पेरिस की रक्षा को सर्वोपरि समझे। एक सज्जन चुने जाने पर स्त्रियों को वोट दिलाने के लिये लड़ने का वायदा करते हैं। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि फ्रांस तथा योरप के कुछ अन्य छोटे देशो में अभी तक स्त्रियो को कौंसिल क्या चुगी तक में न वोट देने का अधिकार है न चुनकर जाने का ही। बरसो से कोशिश हो रही है लेकिन बहुमत इसके ख़िलाफ है। नई सभ्यता के सबध मे व्यवहार स्वरूप योरप में काफी मतभेद अभी तक चले जा रहे हैं। हमी लोग नक़ल करने में सबसे आगे हो जाते हैं।

इधर हाल मे नेपोलियन के लगभग ३०० नए पत्र इगलैंड में मिले थे। यहाँ की सरकार ने उन्हे ख़रीद लिया है, और उनकी यहाँ प्रदर्शनी हो रही है। हज़ारो फ़्रासीसी उन्हे बड़े चाव से देखने जाते हैं। राष्ट्रीयता क्या चीज़ है, यह यहाँ समझ मे आता है। कल मै भी देखने गया था।

मेरे 'फोनेटिक्स' के प्रोफेसर ज़ेक (Czecho-Slovakian) हैं। आज दो-तीन घटे उनसे बातचीत होती रही। अपने देश की स्वतत्रता की कहानी सुनाते रहे। इस नाते भारत के साथ इन सबकी सहानुभूति है। पिछले हफ़्ते एक पोलैंड के विद्यार्थी के यहाँ चाय पर गया था। वह बड़े गौरव से अपने देश के उत्थान का हाल सुनाता था। कहता था, हमारा देश केवल १५ वर्ष से स्वतत्र है लेकिन इतने ही समय मे देश की कायापलट हो गई है। यहाँ इस तरह के बड़े रोचक अनुभव होते हैं।

योरप में रहने, खाने-पीने वग़ैरह की वैसी सफाई क़रीब-क़रीब नामुमकिन है जैसी अपने देश में होती है। हाँ, कोई अपना ख़ास इतज़ाम करे तो दूसरी बात है। कमरे मे ठडे और गरम पानी के नल हैं, अतः प्रायः नित्य शरीर अँगोछ लेता हूँ। सचमुच का नहाना हर इतवार को होता है, लेकिन फिर ख़ूब अच्छी तरह—बड़े टब मे। रोज़ नहाने में १) किराए के सिवा तवालत भी है—

चार-पाँच मज़िल उतरकर जाय। यहाँ चुगी की नहाने की जगहे।) आने तक की हैं। लेकिन जाड़े मे बाहर नहाने जाना ठीक नही, क्योंकि गरम ग़ुसलख़ाने से बाहर ठड मे निकलना पड़ता है और यह नुक़सान कर सकता है। खाने के सबध मे रूसी रेस्टराँ मे अब कोई कठिनाई नही होती बल्कि खाना मुँह लग गया है। दूसरे, खाने की चीज़ो तथा उनके नामो की जानकारी हो जाने की वजह से अब चीज़ो के छाटने मे दिक़्क़त नही पड़ती। रेस्टराँवाले भी मेरे खाने को समझ गए हैं। चावल सादे अक्सर बनते हैं। उनके साथ आलू, मटर, मसूर की दाल या कोई साग मँगवा लिया। डबल रोटी रहती ही है। फिर और क्या चाहिए। बाद को डबल रोटी का एकआध टुकड़ा दही, शहद या मुरब्बे से खा लिया। सच तो यह है कि यहाँ का खाना तदुरुस्ती के लिये बहुत अच्छा है।

अडो से कभी-कभी खीच-तान हो जाती है। आज सुबह एक नए शाका-हारी रेस्टराँ में गया था। यहाँ एक तरह का बथुए का साग होता है, जो पेट साफ रखता है। मैंने एक तश्तरी साग मँगवाया। नौकरनी बहुत साफ तश्तरी मे साग लाई, किंतु उसके ऊपर दो टुकड़े तराशे हुए अडे के भी रख लाई। मैने जब कहा कि अडा मै नही खाता, तो आँखे फाड़कर देखने लगी, और उन्हे हटाकर तश्तरी सामने रख दी। मैंने जब दूसरी तश्तरी लाने को कहा, तो यह बात उसकी समझ मे बिलकुल ही नही आई। दुबारा वह बिना अडे का साग लाई ज़रूर, लेकिन वही से अडे के टुकड़े हटाकर ले आई या कड़ाही से नया साग लाई यह भगवान् जाने। साक्षात्रूप मे तो अडा ज़रूर नही खाया लेकिन अनजाने कुछ अश पेट मे पहुँच गया हो तो कोई आश्चर्य नही। इन चीज़ों से अब मै पहले की तरह डरता नही हूँ। वे अलग ख़ुश रहे, मै अलग ख़ुश हूँ।

फ़रवरी, १९३५

६—लंदन से पत्र

ईस्टर की छुट्टी में मै लंदन घूमने चला आया हूॅ। पेरिस से लदन का लौटा-फेरी का ईस्टर का कनसेशन टिकट ५०) का आया। यहाँ रेल का किराया बहुत है। सुबह ८½ बजे पेरिस से चलकर शाम को ४½ बजे लदन पहुँचा। इंगलिश चैनेल पार करने मे स्टीमर पर लगभग एक घंटा लगा, मानो बरसाती गंगा नाव द्वारा पार की जा रही हो। उस दिन चैनेल काफी ख़राब था। स्टीमर भी छोटा था। अधिकाश लोगो की तबियते एक घंटे मे ही ख़राब हो गई। मै तो यहाँ भी बच गया, यद्यपि स्टीमर इतना हिलता था कि घूमने-फिरने की हिम्मत न पड़ती थी। विश्वेश्वर प्रसाद वग़ैरह स्टेशन पर लेने आ गए थे। उन्हीं के साथ ठहरा हूॅ। जगह शहर के बाहर है, और साफ-सुथरी तथा शात है। पेरिस से लदन सस्ता है। पेरिस के २००) और लदन के १५०) बराबर हैं। पहले उल्टा था।

रेल मे फ्रास और इगलैंड का कुछ हिस्सा देखने को मिला। ऐसा मालूम होता था जैसे बरसात के बाद आगरे से अजमेर का सफर कर रहा होऊँ—वैसा ही पहाड़ी प्रदेश, लेकिन ज्यादा लहरेदार। वसंत की वजह से अब यहाँ सब जगह हरियाली आ गई है। इंगलैंड में जगह-जगह बाड़ों में सफेद भेड़ों, मुर्ग़ियो की काबकों तथा घोड़ों से जुतते हुए खेतों को देखकर ही ख़याल आता था कि कोई दूसरा देश है। दक्षिण-इगलैंड का यह भाग उत्तर-फ्रास से अधिक पहाड़ी है। पेरिस देखे हुए आदमी के लिये लदन मे दुमज़िला लाल 'बस' (मोटरों) को छोड़कर और कुछ भी सहसा भिन्न नहीं मालूम होता। चौड़ी सड़कों, सुदर चौराहों, रंग-बिरगी रोशनी और शानदार इमारतों मे पेरिस लंदन से कहीं अधिक बढ़कर है। ग़ौर से देखने से आदमी कुछ अवश्य भिन्न मालूम होते हैं, मानों काशी के गोल, मोटे, शौक़ीन आदमियो के स्थान पर मेरठ-मुज़फ़्फ़रनगर

३१. इगलैंड की ऊँची नीची भूमि तथा चरागाह
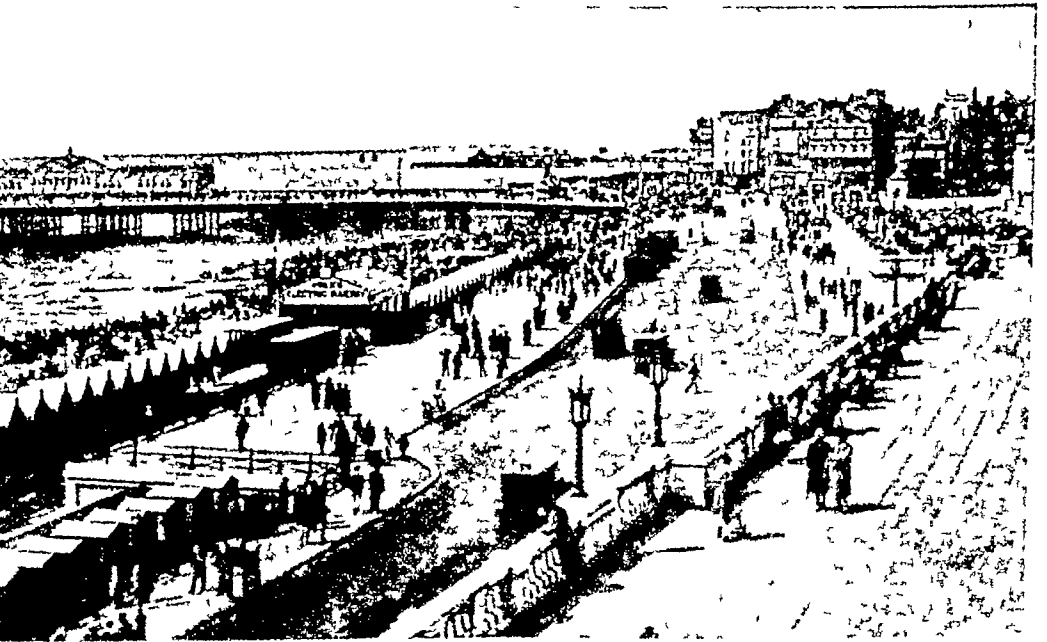
३२. ब्राइटन—समुद्रतट
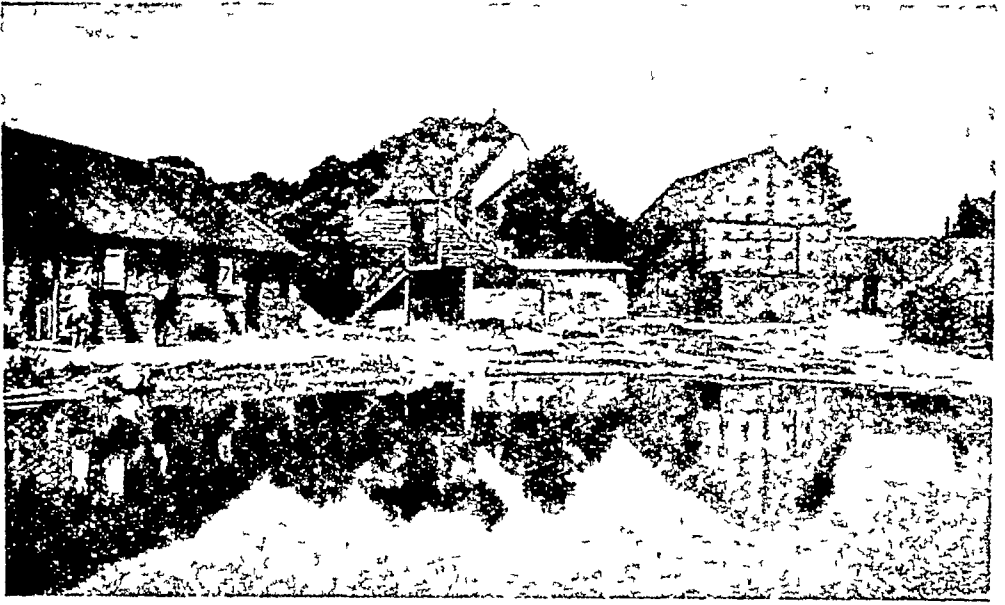
२३. इंगलैंड—एक ग्रामीण दृश्य
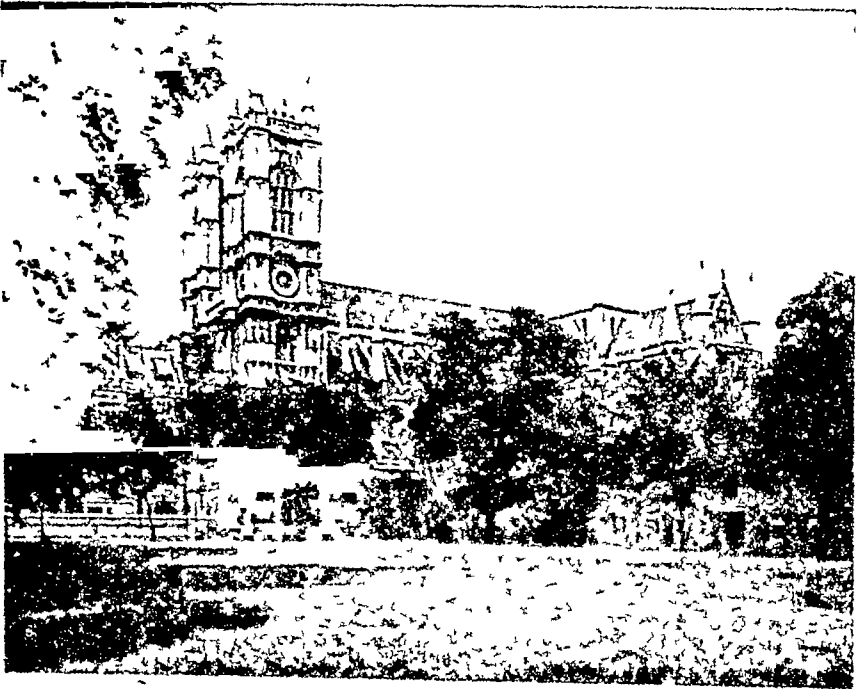
२४. वेस्ट मिनस्टर गिर्जाघर—लंदन

के जाट-गूजरोंवाले अक्खड़ देश में आप पहुँच गए हो। मौसम यहाँ भी पेरिस का-सा ही है—कभी धूप, कभी बादल, कभी बूँदा-बाँदी।

शनिवार को हम लोग समुद्र के किनारे ब्राइटन घूमने गए थे। 'बस' में जाने की वजह से रास्ता भी ख़ूब देखने को मिला। बराबर पहाड़ी प्रदेश था। धूप न निकलने के कारण ब्राइटन का पूरा आनद नहीं मिला। यों जगह सुदर है। मनोरजन के बहुत प्रबध हैं। ब्राइटन का समुद्री मछलियों का अजायबघर बहुत प्रसिद्ध है यद्यपि मुझे कुछ बहुत असाधारण नही दिखलाई पड़ा।

एक दिन हम लोग ऑक्सफर्ड भी घूम आए। लदन से ढाई घटे का रास्ता है। बस्ती के बीच की एक सडक को छोड़कर ऑक्सफर्ड में सब जगह प्राचीनता है। कॉलेजों की इमारतें ज्यादातर बहुत पुरानी हैं। आमेर या फतेहपुर सीकरी की याद आती है। होस्टलों वग़ैरह मे कोयले जलाए जाते हैं। 'सेंट्रल हीटिंग' कहीं नही है। होस्टलो मे लड़कों को १० बजे रात तक ज़रूर पहुँच जाना चाहिए, नहीं तो जुरमाना देना होता है। इस बात की बहुत पाबदी है। लड़कियाँ पढती तो लड़कों के साथ हैं, लेकिन उनके होस्टल बहुत दूर हैं, तथा लड़कों की 'यूनियन' की मेम्बर नही हो सकतीं। जगह शात और यूनिवर्सिटी के वातावरण के योग्य है। ऑक्सफर्ड भी टेम्स नदी के किनारे है, लेकिन यहाँ टेम्स अपने गाँव की नदी के बराबर होगी। टेम्स का किनारा सुहावना ज़रूर है। हर कॉलेज के बजरे नदी मे पड़े रहते हैं, और इन पर कपड़े वग़ैरह बदल कर लड़के नदी मे छोटी नावें चलाने का अभ्यास करते हैं। ऑक्सफर्ड में लड़के-लड़कियाँ साइकिल बहुत इस्तेमाल करते हैं। लड़कियाँ बेत की टोकनियों में (जो साइकिल मे बँधी रहती हैं) किताबे आदि रखती हैं। योरप मे हर जगह नवीनता आ गई हो यह बात नहीं है। प्राचीनता को भी कुछ लोग सुरक्षित रखना चाहते हैं।

दो-तीन दिन लंदन के भी प्रसिद्ध स्थान घूमकर देखे। ब्रिटिश-म्यूज़ियम में प्राचीन चीज़ों का बहुत बड़ा सग्रह है। यहाँ का पुस्तकालय तो प्रसिद्ध है ही,

यद्यपि यह पेरिस के नेशनल बिब्लियोथेक से बड़ा नहीं बतलाया जाता है। मुझे तो साइस-म्यूज़ियम बहुत पसंद आया। आधुनिक समस्त चीज़ो का विकास एक नज़र डालते ही देखने को मिल सकता है। बच्चों का विभाग विशेष रोचक है। हर विभाग में बहुत-सी मशीनें चलाकर देखी जा सकती हैं। इंपीरियल इंस्टिट्यूट मे साम्राज्य के भिन्न-भिन्न देशो की उपज का सग्रह तिजारती ढग से किया गया है। ऐलबर्ट-म्यूज़ियम में भारतीय वस्तुओ का कला की दृष्टि से अच्छा संग्रह है। इपीरियल युद्ध-सबधी अजायबघर में पिछले युद्ध से सबध रखनेवाली वस्तुएँ तथा चित्र आदि राष्ट्र को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से एकत्र किए गए हैं। महायुद्ध मे इंगलैंड को जन-धन से सहायता देने के स्मारक-स्वरूप महाराज बीकानेर का एक चित्र तथा ज़ीने के रास्ते मे कुछ सिक्ख सिपाहियों के चित्र दिखलाई पड़े। लंदन का कलात्मक चित्रो का सग्रह नेशनल गैलरी मे है, किंतु यह पेरिस के लूव्र के सग्रह के सामने कुछ भी नही है। अँगरेज़ लोग ललित कलाओ मे बहुत दक्ष नही हैं।

लंदन की प्रसिद्ध इमारतो मे पार्लिमेंट देखने गया था। पार्लिमेंट के हॉल इलाहाबाद के हिंदूबोर्डिंग हाउस के बलरामपुर-हॉल से कुछ बड़े हैं। वेस्ट मिनिस्टर गिरजाघर मे राष्ट्रीय 'छतरियो' का सग्रह-स्थान समझिए। इमारत बहुत पुरानी तथा जीर्ण-शीर्ण है। सेंटपाल का गिरजाघर वास्तव मे विशाल तथा सुंदर है। लदन-टावर या क़िला कुछ भी नहीं है। यहाँ शाही मुकुट आदि का संग्रह अवश्य दर्शनीय है। इगलैंड के प्रधान सचिव का स्थान, १० डाउनिंग स्ट्रीट, चौमंज़िला सादी-सी इमारत है। बादशाह का महल बकिंघम-पैलेस भी किसी बड़े ताल्लुक़ेदार के महल से अधिक प्रभाव नही डालता। लदन की इमारतें बाहर से प्रायः भव्य नही हैं। पार्कों मे हाइड-पार्क, रीजेंट-पार्क, केंसिंगटन-गार्डेंस प्रसिद्ध हैं। मोहल्लो के पार्क, जो 'कामंस' कहलाते हैं, बड़े अवश्य हैं किंतु अधिक सुंदर नहीं हैं।

लदन में देशी खाने का बड़ा सुबीता है। योरप में लदन और बर्लिन को
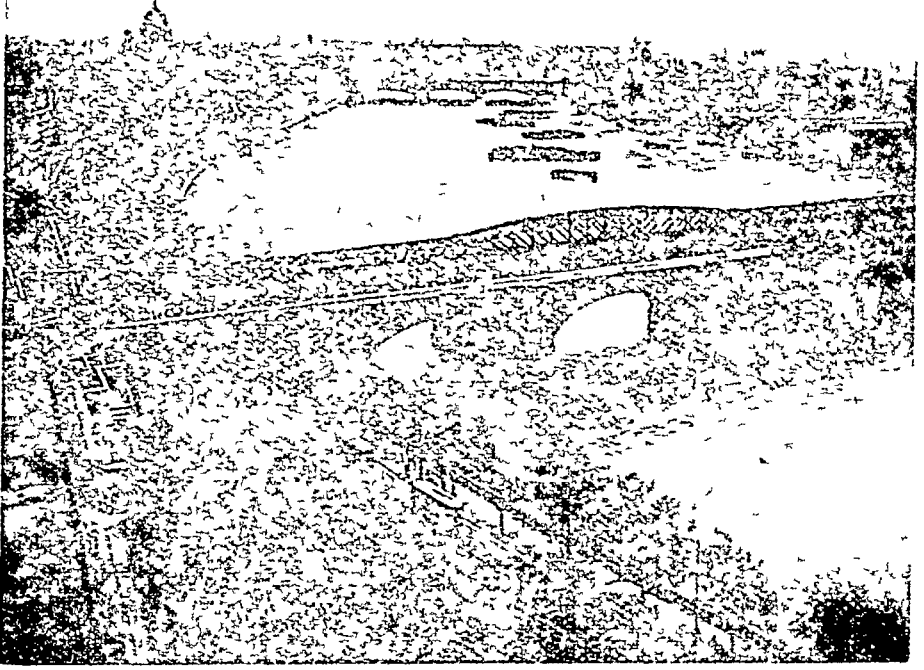
३५. टेम्स नदी तथा नगर का एक दृश्य—लंदन

३६. हाइड पार्क का एक कोना—लदन
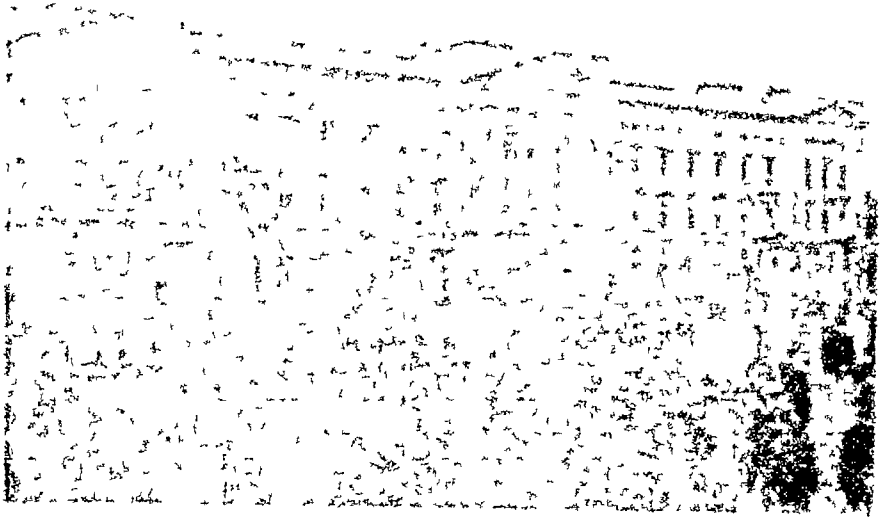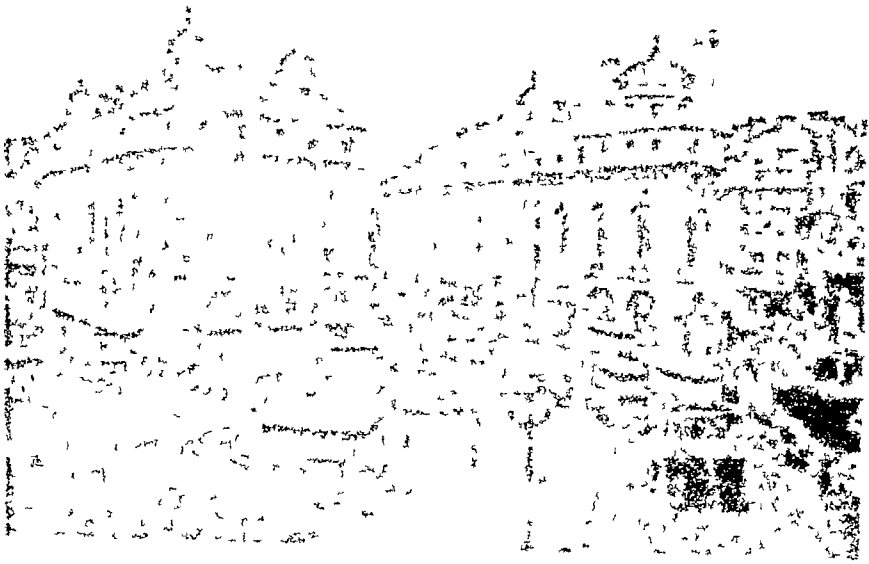
छोड़कर देशी खाना और कही नही मिलता। अपने देश मे तो अँगरेज़ी खाने का प्रबध स्टेशनो तक पर रहता है। लदन मे लगभग आधे दर्जन देशी भोजनालय होंगे, जिनमे कोहेनूर, वीर स्वामी, शालामार, नूरजहाँ तथा शफी के रेस्टराँ अधिक प्रसिद्ध हैं। मैंने लगभग सबमे खाना खाया। कोहेनूर रेस्टराँ मामूली तौर से सबसे अच्छा है। यद्यपि सब सामान कोकोजेम मे बनता है, किंतु तो भी लदन मे पूरी, तरकारी, दाल, रोटी, पकौड़ी, रायता इत्यादि खाने मे विशेष सुख मालूम पड़ता है। एक दिन बिरला साहब के 'आर्य-भवन' मे भी खाना खाया था। वहाँ का खाना बेहतर था, यद्यपि गुजराती ढग का था।

योरप के अन्य देशो के बाद लदन पहुँचने पर भाषा का भी सुख विशेष होता है। फ्रासीसी, इटैलियन अथवा जर्मन बोलनेवालो के मुक़ाबिले मे अँगरेज़ी बोलनेवाले लोग अपने आत्मीय से मालूम पड़ते हैं, यद्यपि लदन के साधारण लोगो की अँगरेज़ी-भाषा जन्म-भर अँगरेज़ी लिखने, पढ़ने, बोलने के बाद भी सहसा ठीक समझ मे नही आती। 'क्यू' से 'थैंक यू' तथा 'साइ' से 'से' (say) समझने के लिये विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है।

जो हो, दस-बारह दिन घूमने-फिरने से यहाँ का कुछ परिचय हो गया। बृहस्पति या शुक्र को पेरिस लौटने का विचार है।

अप्रैल, १९३५

७–पेरिस से तीसरा पत्र

१ मई को तमाम योरप मे सोशलिस्ट लोग अपना दिवस मनाते हैं। इस बार पेरिस मे शाति रही। कहने को तो चुंगी के चुनाव का बहाना था लेकिन सुनते हैं वास्तव मे जर्मनी की नई नीति के कारण यहाँ के सोशलिस्ट यहाँ की वर्तमान गवर्नमेंट से मिल गए हैं, जिससे राष्ट्र की शक्ति का अपव्यय न हो। बाहरी दुश्मन के सामने यहाँ के सब घरेलू झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

यहाँ पेरिस मे स्वदेशी मेले की तरह हर साल दो हफ़्ते मेला होता है। कल मै भी देखने गया था। मेले की मुस्तक़िल जगह है। इलाहाबाद के 'म्यो हॉल' की तरह के क़रीब ५० हॉलो मे ज़रूरत के सभी सामानो की प्रदर्शनी थी। मशीन, मेज़, कुर्सी तथा शराबो से कई हॉल भरे थे। 'डेरी' वाले दूध तथा शराब के दुकानदार शराब मुफ़्त बाँटकर इन चीज़ों का प्रचार कर रहे थे। एक दिन यहाँ के हवाई जहाज़ों का 'म्यूज़ियम' भी देखने गया था। यह बहुत ही ख़राब हालत मे पड़ा था।

जून के अतिम सप्ताह मे प० क्षेमकरणदास त्रिवेदी की नातिन, अपने दो बच्चों के साथ, लदन से घर लौटते हुए, तीन-चार दिन यहाँ रुकी थी। एक दिन इन लोगों के साथ 'ऑपरा' (फ़्रास की सगीत-एकेडेमी व थिएटर) देखने भी गया था। उस दिन योरप के भिन्न-भिन्न देशो के फौजी बैंडों का प्रोग्राम था। यहाँ के सब राष्ट्र ख़ूब जीती-जागती हालत में हैं। राष्ट्रीय जीवन का प्रत्येक अग ख़ूब विकसित है। त्रिवेदी जी की नातिन ट्रेनिंग की परीक्षा पास करके जारही हैं। लौटकर लखीमपुर मे स्कूल चलाने को सोचती हैं। उनके दोनों बच्चे (लड़का, लड़की) ख़ूब अँगरेज़ी बोलने लगे हैं—इगलैंड में अँगरेज़ी स्कूलों मे पढते थे—लेकिन साथ ही लड़का रात को सोने से पहले ईसाइयों की प्रार्थना करने लगा है। पूछता था, 'नमस्ते' क्या चीज़ होती है। अपने

पिता के बारे मे एक दिन अपनी मा से पूछता था—(Mama, where is dad ?) । मा परेशान थी ।

पिछले महीने भारत लौटते हुए सर तेजबहादुर सप्रू भी यहाँ दो-तीन दिन ठहरे थे । एक दिन उनसे मिलने उनके होटल चला गया था । हिंदुस्तानी एकेडेमी की वजह से मुझे थोड़ा जानते हैं, इसलिये मैंने मिल लेना मुनासिब समझा । क़रीब एक घटे ग़प-शप होती रही । ज़्यादातर बातचीत 'बेकारी की कमेटी' (Unemployment Committee) के बारे मे रही । कहते थे, मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि निकट भविष्य मे इसका कुछ उपाय नही हो सकता । सप्रू साहब का ख़याल है कि इंगलैंड की तरह भारत मे भी यूनिवर्सिटियो मे या तो बहुत तेज़ लड़के या अमीरों के लड़के पहुँचने चाहिए । साधारण श्रेणी के लोगो को अपने साधारण लड़के यूनिवर्सिटियो मे नहीं भेजने चाहिए । शायद यूनिवर्सिटी की फीसे इतनी बढा दी जायँगी कि सब जा ही न सके । गवर्नमेंट तो रिपोर्ट छपते ही इस ख़याल को ले उड़ेगी । यह निश्चित है कि अपने देश की यूनिवर्सिटियो का भविष्य अच्छा नही । कुछ देर हिंदुस्तानी एकेडेमी की बाते भी होती रही । यहाँ की यूनिवर्सिटी का हाल पूछते थे । सप्रू साहब कमरे मे पाजामा और रेशमी कुरता पहने थे । एक नौकर भी साथ मे था ।

एक दिन शाम को यूनिवर्सिटी के 'इंडियन इंस्टिट्यूट' मे उनका व्याख्यान हुआ था, और उन्हे चाय दी गई थी । आधुनिक भारत मे संस्कृति की एकता पर वे बोले थे । कुछ बाते उन्होंने अच्छी खरी कही । उन्होंने कहा, योरप के लोगो की नज़र भारत के दोषो तथा भेदो पर ज्यादा पड़ती है, और गुणो तथा एकताओ पर कम । योरपियन लोग हमेशा यह कहते हैं कि भारत मे २०० से अधिक भाषाएँ हैं, लेकिन यह कभी नही बताते कि लगभग समस्त पश्चिम योरप के बराबर उत्तर-भारत मे केवल एक भाषा से काम चल जाता है । चार हफ़्ते घूमकर हिंदुस्तान पर किताब लिख देते हैं, जिसमे सिर्फ़ ऐबों का लेखा रहता है । यदि कोई चाहे, तो क्या योरप के मुल्को पर ऐसी

किताब नहीं लिखी जा सकती ? ऐब कहाँ नहीं हैं ? जो विद्वान्—ख़ासकर फ्रांस आदि के—अध्ययन भी करते हैं, तो भारत की प्राचीन संस्कृति का, और उसे भी एक अजायबघर की-सी चीज़ समझकर । वे यह भुला देते हैं कि भारत एक जीता-जागता देश भी है । यह अवश्य है कि वह अपनी कठिनाइयों में अभी उलझा हुआ है, लेकिन उसका भी भविष्य है । प्रो० लेवी और प्रो० ब्लाक दोनों ही उनकी ऐसी बातों पर तिलमिलाए । प्रो० ब्लाक ने मुझसे कान में कहा कि यह भी प्रोपेगैंडा है । प्रो० लेवी ने उठकर कहा कि हम लोग वर्तमान भारत के अध्ययन की ओर उदासीन नहीं हैं । कठिनाई यह है कि भारत की सबसे बड़ी वर्तमान समस्या राजनीतिक है, लेकिन अँगरेज़ हमारे पड़ोसी हैं अतः हम भारत की राजनीतिक समस्या में पड़कर उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहते । जो हो, सप्रू साहब ने विदेशियों के सामने जैसी स्पीच देनी चाहिए, वैसी ही दी ।

पिछले हफ्ते यहाँ योरप के लेखकों की एक वृहत् कांग्रेस हुई थी । एक दिन मैं भी गया था । जर्मनी, रूस, इटली आदि से भी प्रतिनिधि आए थे । दिखाने के लिये तो इस कांग्रेस का उद्देश्य योरपियन लेखकों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना था, लेकिन वहाँ जाकर पता चला कि वास्तव में जर्मनी में लेखकों पर जो सख़्ती हो रही है उसके विरुद्ध अन्य देशों के लेखकों को भड़काने के उद्देश्य से शायद यहाँ की गवर्नमेंट ने इस कांग्रेस की आयोजना की थी । ख़ूब जोशीले व्याख्यान हो रहे थे । जर्मनी में जो पुस्तकें ज़ब्त हुई हैं उनकी अलग दुकान थी, तथा वहाँ जिन लेखकों को क़ैद किया गया है, या देश से निकाला गया है, उनकी तसवीरें एक बड़े बोर्ड पर लगी थीं ।

कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के भाषा-विज्ञान के प्रोफेसर डॉ० सुनीतिकुमार चैटर्जी आजकल यहाँ हैं । अगले हफ्ते लंदन जायेंगे । आज प्रो० लेवी के गाँव के घर पर हम लोग उनसे मिलने गए थे । गाँव यों तो क़स्बा था, लेकिन लीद वग़ैरह से भरी गलियों की गंदगी देखकर अपने गाँवों की याद आ गई । प्रो०

लेवी अपनी स्त्री के साथ बर्तन लिए दूध लेने बाज़ार जा रहे थे। बिना बटनों का सफेद गबरून का कोट और बिना मोज़ों के पुराने जूते पहने थे, व फटी टाई लगाए थे। घर बुरा नहीं था। ऐसा समझिए जैसे अपना बरेली का घर 'विश्राम-कुंज' पूरा मकान बन जाने पर हो जायगा। सुनीति बाबू का धारा प्रवाह बातचीत करने का स्वभाव वैसा ही है। इसी होटल में ठहरे हैं।

यहाँ अब गरमी सचमुच की शुरू हो गई है। जब धूप निकलती है तब तो धूप मे चलने पर ठडे कपड़ों में भी पसीना आ जाता है। बदली हो जाने पर फिर सुहावना हो जाता है। दस-पाँच मिनट को आँधी, पानी, ओले भी दो-तीन बार पड चुके हैं। यहाँ पानी १०-५ मिनट से ज्यादा नही बरसता। कमरे में सिर्फ क़मीज़ पहनकर रहना पड़ता है। मालूम होता है जुलाई-अगस्त काफी गरम हो जायँगे। १४ जुलाई को फ़ास मे स्वतत्रता-दिवस मनाया जाता है। इसकी तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। कुछ घरेलू राजनीतिक गड़बड़ की अफ-वाहे भी हैं।

बिलोचिस्तान में तो सचमुच प्रलय ही-सा हो गया। यहाँ इङ्गलैण्ड के अख़बार मैंने उन दिनों लेकर पढे थे। थोड़े-से अँगरेज़ों के मरने की ही उन्हें विशेष चिता थी। यहाँ जुलाई के दूसरे सप्ताह से यूनिवर्सिटी में गरमियों की छुट्टी प्रारभ होती है। इस छुट्टी में योरप के कुछ अन्य देशों की यात्रा करने का विचार है।

जुलाई, १९३५

८—बेलजियम से पत्र

१८ जुलाई, १९३५ को ८ बजे सुबह पेरिस से चलकर १२-३० बजे दोपहर को हम लोग ब्रूसेल्स पहुँचे। हम लोगो की योरप-यात्रा का यह पहला पड़ाव है।

बेलजियम वास्तव मे फ्रास का ही एक भाग है। लोग फ्रासीसी बोलते हैं। ब्रूसेल्स शहर भी पेरिस से ही मिलता-जुलता है। छोटा होने तथा खेतो और जंगलो से अधिक घिरा होने की वजह से ज़रा क़स्बेपन का आनद आता है। यो ख़ास शहर काफी बड़ा है। उसी दिन शाम को हम लोग यहाँ की प्रदर्शनी घूमने गये थे—काफी बड़ी और सजी हुई है, लेकिन पेरिस की वार्षिक प्रदर्शनी (Foire de Paris) देखने के बाद कोई विशेषता नही दिखलाई पड़ी। यहाँ समस्त प्रदर्शनियाँ तिजारती दृष्टि से की जाती हैं। हर तरह का तिजारती माल उनमे दिखाया जाता है। बेलजियम के दोस्तों—जैसे फ्रास, इंगलैंड, इटली आदि—की भी अलग-अलग इमारते हैं। जर्मनी ने प्रदर्शनी में बिलकुल भाग नही लिया है। एक बड़ा अतर्राष्ट्रीय हॉल (International Hall) है, जिसमे एक पजाबी दंपति की जयपुरी पीतल के काम की दुकान भारत के प्रतिनिधि-स्वरूप है। कार्निवाल के ढङ्ग के तरह-तरह के खेल-खिलवाड़ों का प्रबध है और ये प्रदर्शनी की तिहाई जगह घेरे हुये हैं। एक नन्ही-सी खुली रेलगाड़ी मे बैठकर लोग सारी प्रदर्शनी का चक्कर लगा सकते हैं। इसका नन्हा-सा एजिन और छोटे-छोटे खुले डिब्बे तमाशे-से लगते हैं।

दूसरे दिन सुबह हम लोग वाटरलू का प्रसिद्ध युद्ध-क्षेत्र देखने गये थे, जहाँ वेलिंगटन ने नेपोलियन को हराया था। यह जगह शहर से क़रीब १५ मील पर होगी। ट्रैम घटे-भर मे पहुँचा देती है। रास्ते में जंगल, गाँवों और खेतों का दृश्य अच्छा है। इन्ही के बीच कुछ छितरे गाँवो से घिरा हुआ,

३९. हम "लोग"
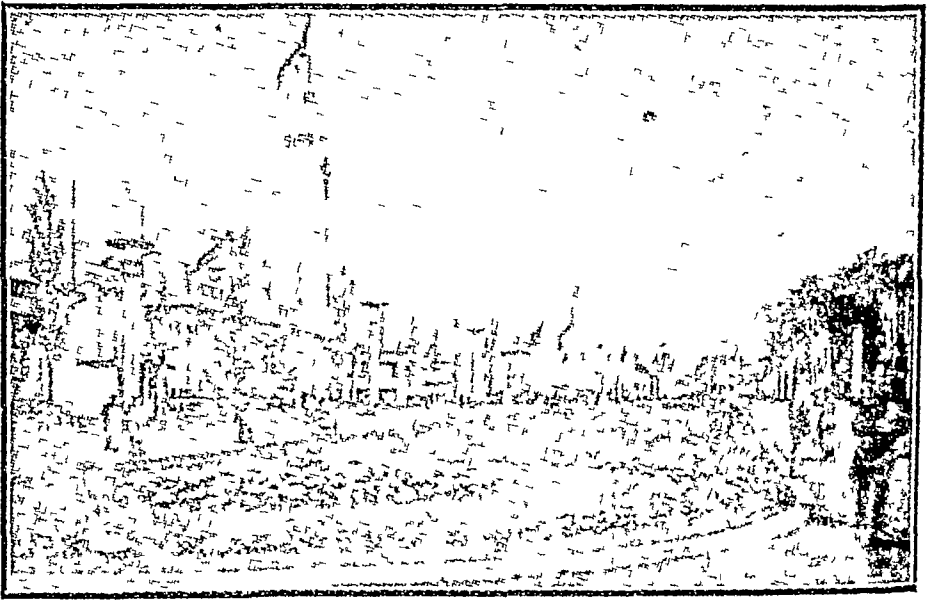
४०. ब्रसेल्स की प्रदर्शनी का एक दृश्य

४१. वाटरलू—युद्धक्षेत्र का स्मारक
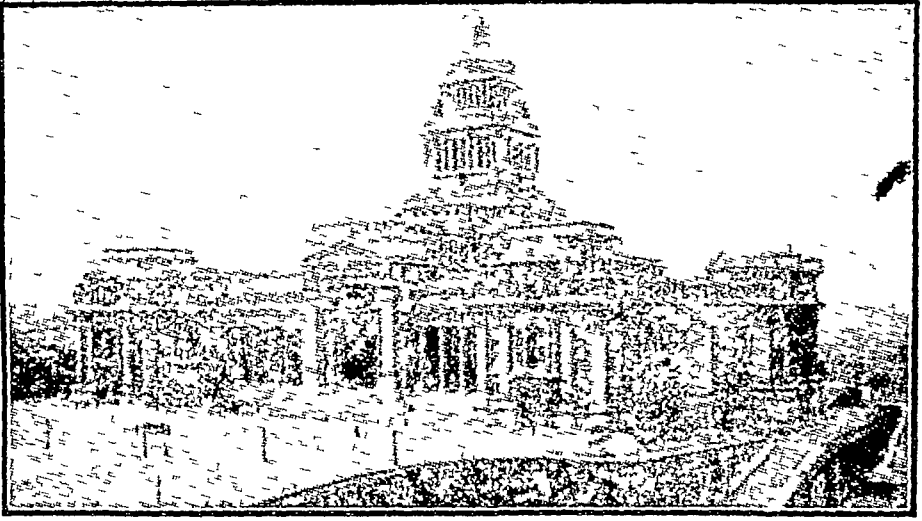
४२. ब्रूसेल्स का हाईकोर्ट
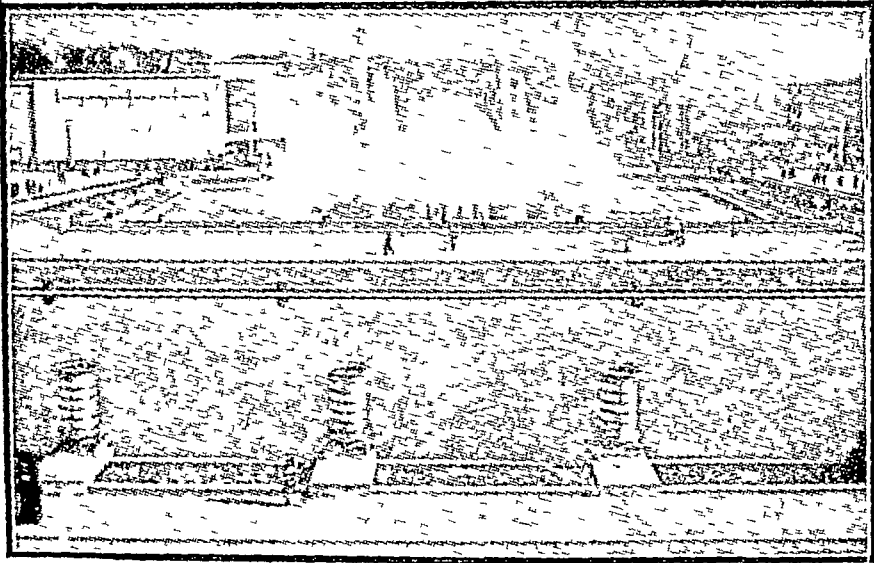
४३. ब्रूसेल्स की प्रदर्शनी मे फव्वारो का दृश्य
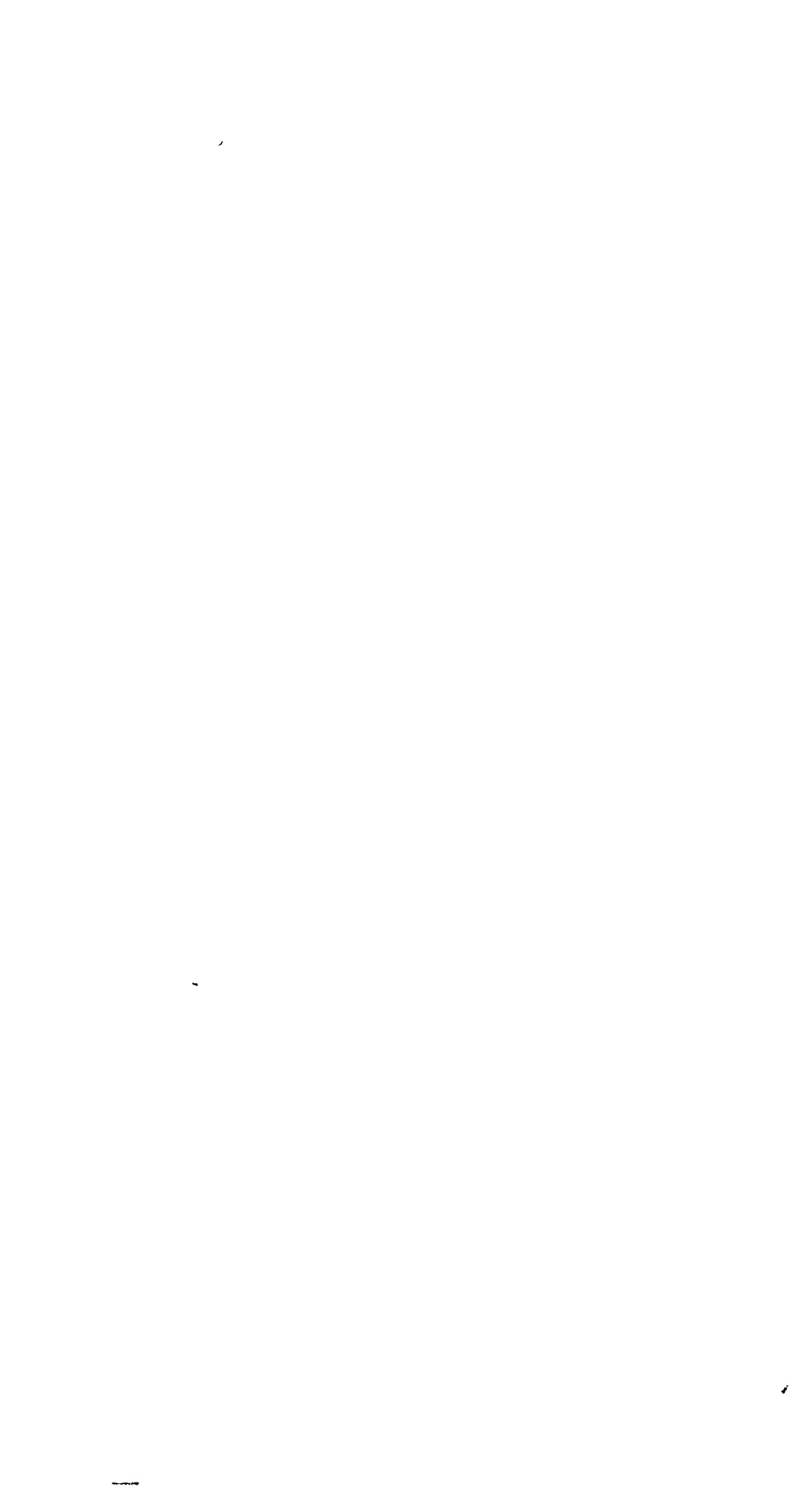
पैज़ावे की तरह मिट्टी का एक ऊँचा टीला है, जिसके ऊपर ब्रिटेन की द्योतक पीतल की सिह की मूर्ति इस रण के स्मारक-स्वरूप है। इस टीले के पड़ोस मे ही एक गोलाकार इमारत है, जिसकी दीवारो पर दोनो ओर की फौजो की स्थिति दिखलाने के लिये युद्ध-क्षेत्र की चित्रावली है। इसे हम लोगो ने विशेष रोचक पाया।

तीसरे पहर हम लोगो ने ब्रूसेल्स का शहर थोड़ा-बहुत घूमा। यहाँ के हाई-कोर्ट की इमारत सबसे अधिक शानदार है। बाज़ार के ख़ास चौक मे खड़े होकर ग्वालियर के चौक की याद आती थी। बेलजियम मे अब भी राजा राज्य करता है। उसका महल साधारण था। उसके सामने का पार्क तो और भी खराब हालत मे था। पिछली लड़ाई का असर अभी गया नही है। बड़ी किफायत से ये लोग ख़र्च कर रहे हैं। शायद यह प्रदर्शनी भी रुपया कमाने के लिये ही है। शाम को खाना हम लोगो ने एक शाकाहारी भोजनालय मे खाया। खाना काफी अच्छा और सस्ता था। चावल टिमाटर के साथ बहुत स्वादिष्ट बने हुए थे। मि० रामकुमार तथा विश्वेश्वर प्रसाद को मुर्ग़ी न मिलने की वजह से अडो का ही सहारा लेना पड़ा। गाय के गोश्त के डर से गोश्त खाना ये लोग यहाँ प्रायः बचा जाते हैं। इतना 'अध-विश्वासपन' अक्सर हिंदू भारतीयों मे चलता रहता है। बहुत-से आगे भी बढ़े हुए हैं।

शाम को हम लोग दुबारा नुमाइश देखने गए थे। बिजली की रोशनी से नुमाइश को विशेष रूप से सजाया गया था। इसका अदाज़ इसके पिछले दिन नही हो सका था। रग-बिरगी बिजली की रोशनी से जगमगानेवाले खभो, फव्वारो, दरख़्तो तथा इमारतो का दृश्य सहसा आकर्षक ज़रूर लगता था। एक बहुत बड़े फव्वारे मे बिजली की रोशनी का रग बदलने का प्रबध था, इस कारण यह और भी सुहावना लगता था। रात मे प्रायः खेल-तमाशो के हिस्से मे लोग घूमने आते हैं। बस, इलाहाबाद के 'कार्निवालो' से बीस-पचीस-गुना बड़ा दृश्य समझिए—बिजली से चलनेवाली छोटी रेले, नावे, झूले तथा नाच, जादू के खेल, जुआ आदि से यह हिस्सा भरा था। दूरदर्शन (Television)

पहली बार हम लोगों ने यहाँ देखा। एक आदमी एक कमरे मे खड़ा गाता था, और दूसरे कमरे मे गाने के साथ उसकी चलती-फिरती आधी तसवीर काफी साफ दिखलाई पड़ती थी। अभी तसवीर बहुत साफ ज़रूर नही आती है।

बेलजियम के स्त्री-पुरुषो के मुख और व्यवहार से शराफत टपकती है—इगलैड के लोगो का अक्खड़पन तथा पेरिसवालो की कामुकता यहाँ नही दिखलाई पड़ती। लोग बहुत मीठे ढग से बात करते हैं। अगर उन्हे अनुमान भी हो जाता था कि हम लोगो को किसी जगह की तलाश है, तो खुद पूछ लेते थे। दौड़-भाग भी ब्रूसेल्स मे लंदन या पेरिस की-सी नही है। यो साम्राज्य रखनेवाले देशो के दिमाग़ कुछ फिरे हुए होना स्वाभाविक है। बेलजियम के पास तो अफ्रीका मे कागो का हिस्सा भर है। वहाँ की अपनी हबशी रियाया पर इन सीधे आदमियो ने भी काफी जुल्म किए हैं, इसका हाल हम लोगो ने एक बार पढ़ा था।

फ़ास, बेलजियम तथा जर्मनी का इधर का हिस्सा सब एकसाँ ही है—लहरियादार ज़मीन, नीची पहाड़ियाँ, छोटे-छोटे जगल तथा खेत। खेतो मे आजकल गेहूँ की फसल पकी खड़ी है, या कट रही है। चितकबरी, सीधी पीठ की गाएँ भी सब जगह एकसाँ हैं, तथा घोड़ेवाले हल भी समान हैं। इस ओर मुर्गियो के बाड़े और सुअरो के गिरोह ज़रूर कम दिखलाई पड़े। ये इगलैंड के ग्रामीण दृश्यों की विशेषताएँ थी।

बेलजियम सस्ता बहुत है। क़ीमते पेरिस के ही बराबर हैं, लेकिन यहाँ फ्रैंक हम लोगों को एक के बजाय दो मिलते हैं, इसलिये पेरिस की बनिस्बत हम लोगो को चीज़े आधी क़ीमत मे पड़ती हैं। कल कोलों जाने का इरादा है।

ब्रूसेल्स
जुलाई, १९३५
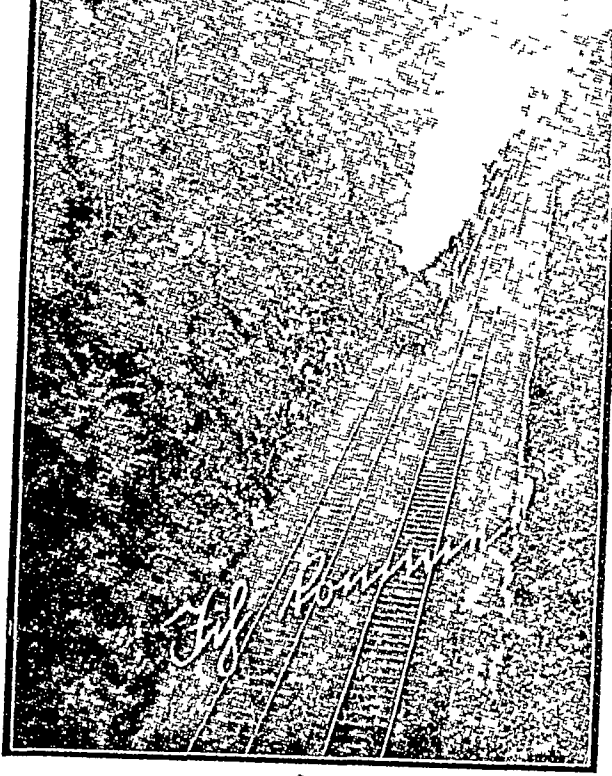
४४. जर्मनी के जगलो मे होकर जाती हुई रेल
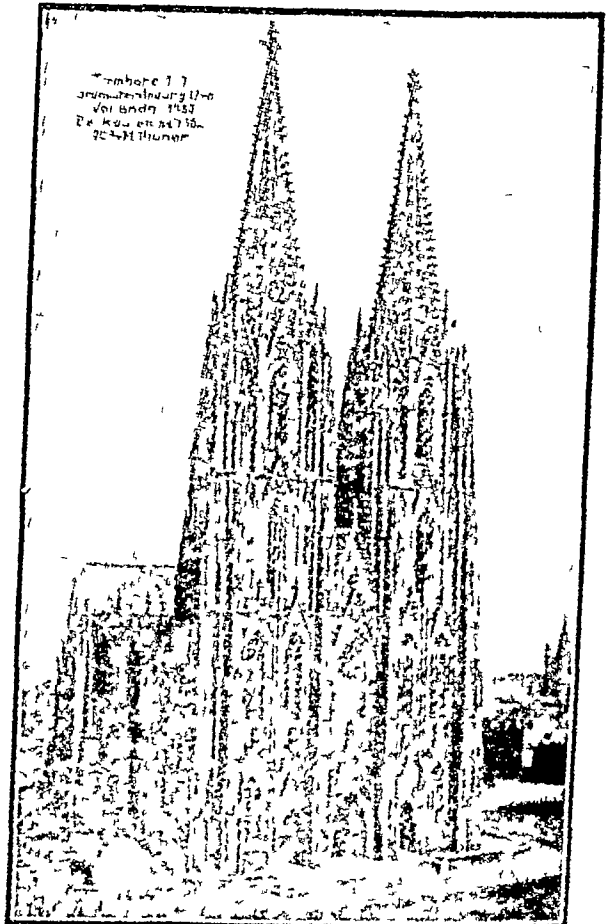
४५. कोलो का प्रसिद्ध गिरजाघर

६—जर्मनी से पहला पत्र

वेलजियम से जर्मनी में हम लोगों ने एक रेल की सुरग पार करके प्रवेश किया। यहाँ से साइनबोर्डों की भाषा एकाएक बदल गई। अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तो लोगों की बातचीत भी भिन्न सुनाई पड़ने लगी। अँगरेज़ी या फ्रेंच जाननेवाले के लिये कुछ भी समझ में नहीं आती। जर्मनी की सरहद के स्टेशन पर पासपोर्ट देखे गये, असबाब की जाँच-पड़ताल हुई, तथा जो कुछ भी रुपया साथ में था, वह सब दिखलाना पडा। हम लोगों का असबाब नहीं खुलवाया गया। फ्रास, इटली, इगलैंड आदि जर्मनी के शत्रु देशों के लोगों के साथ ज्यादा कड़ी देख-भाल की जाती है, ऐसा अनुमान हुआ। रुपये के सबध में यहाँ आजकल एक नियम बन गया है कि जर्मनी के बाहर एक पैसा भी नहीं जा सकता। हाँ, घूमनेवाले जर्मनी मे खर्च करें, इसके लिये बाहर के यात्रियो को यहाँ की गवर्नमेंट अपना सिक्का (मार्क) सस्ता देती है—हम लोगो को मार्क साधारणतया १।) मे पड़ता किंतु ।॥) आने मे मिला। ये रियायती 'मार्क' केवल जर्मनी के बाहर ख़रीदे जा सकते हैं, और पचास से ज़्यादा रोज़ नहीं भुनाये जा सकते। जो हो, इस सुविधा के कारण जर्मनी में अब विदेशी यात्री ख़ूब आने लगे हैं, और जर्मन माल की फुटकर बिक्री भी काफी बढ़ गई है।

कोलों (ॲंगरेज़ी Cologne, जर्मन koln) जर्मनी का तीसरा सबसे बड़ा शहर है—पहला स्थान जर्मनी की राजधानी बर्लिन का है, और दूसरा यहाँ के प्रधान बदरगाह हैमवर्ग का। कोलो शहर जर्मनी की गंगाजी राइन-नदी के किनारे बसा है, जो हुगली का स्मरण दिलाती है। शहर भी कलकत्ते से मिलता-जुलता-सा लगता है। यह शहर दो चीज़ों के लिये प्रसिद्ध है—एक तो कैथीड्रल (रोमन-कैथलिक गिरजाघर) के लिये जो १२४८ ईसवी का बना

है और सचमुच विशाल तथा भव्य है, और दूसरे इत्र के लिये जो 'यू द कोलो' के नाम से दुनिया में हर जगह बिकता है।

योरप की जनता मे धार्मिकता काफी चली जा रही है। हम लोगों का यह भ्रम है कि योरप नास्तिक हो गया है। यह नास्तिकता तो मुट्ठी-भर लोगों का नया फ़ैशन है। योरप के देशो की इन बड़ी इमारतों को देखकर मुझे बराबर स्मरण हो आता है कि अगर १२०० के लगभग विदेशियों से हम लोग हार न जाते तो अपने मध्यदेश में इनसे भी अधिक भव्य और दर्शनीय प्राचीन स्मारक तथा प्राचीन सस्कृति से पूर्ण नगर होते।

जर्मनी के लोग अँगरेज़ो से देखने मे अधिक मिलते-जुलते हैं—एक तरह से अँगरेज़ो के लबेपन और फ्रासीसियों के चौड़े-चकलेपन दोनों का मिश्रण इनमे है। व्यवहार मे अँगरेज़ी रूखेपन और फ्रासीसी चिकनेपन का मेल दिखलाई पड़ता है, यद्यपि झुकाव अँगरेज़ी ढग की तरफ़ अधिक है। फ़्रांसीसियों से ये लोग कही अधिक मुस्तैद दिखलाई पड़ते हैं। चिकनियापन तो बिलकुल ही ग़ायब है। बड़ी उम्र के लोगो के सिर प्रायः बिना बालों के दिखलाई पड़े। लड़के-लड़कियों के झुड-के-झुड स्काउटों की वर्दी पहने मुस्तैदी से इधर से उधर घूमते नज़र आते हैं। ख़ाकी वर्दीवाले वालटियर भी क़वायद करते हुए इधर से उधर गुज़रते हैं। सरकारी अफसर, पुलिस के लोग, स्टेशन के आदमी, सब-के-सब चुस्त, फुर्तीले और ख़ूब चौचित्ते नज़र आते हैं। जैसे जवाहरलालजी के इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हो जाने पर ढीले चुंगी के लोगों की काया-पलट हो गई थी, उसी तरह यहाँ भी लगता है कि ऊपर कोई आदमी ऐसा ज़बरदस्त है जिसके आदर्श ने सबमे जान फूँक दी है।

कल शाम को 'बस' पर हम लोगों ने डेढ घटे शहर का एक चक्कर लगाया था, और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध इमारते देखी थीं। प्राचीन जर्मन-चिह्न गिद्ध के नीचे, लाल ज़मीन पर, सफेद चाँद के बीच मे, काले रग का सीधा स्वस्तिक गुरुकुल के जलसों के 'ओ३म्' या 'नमस्ते' की तरह चारों ओर नज़र
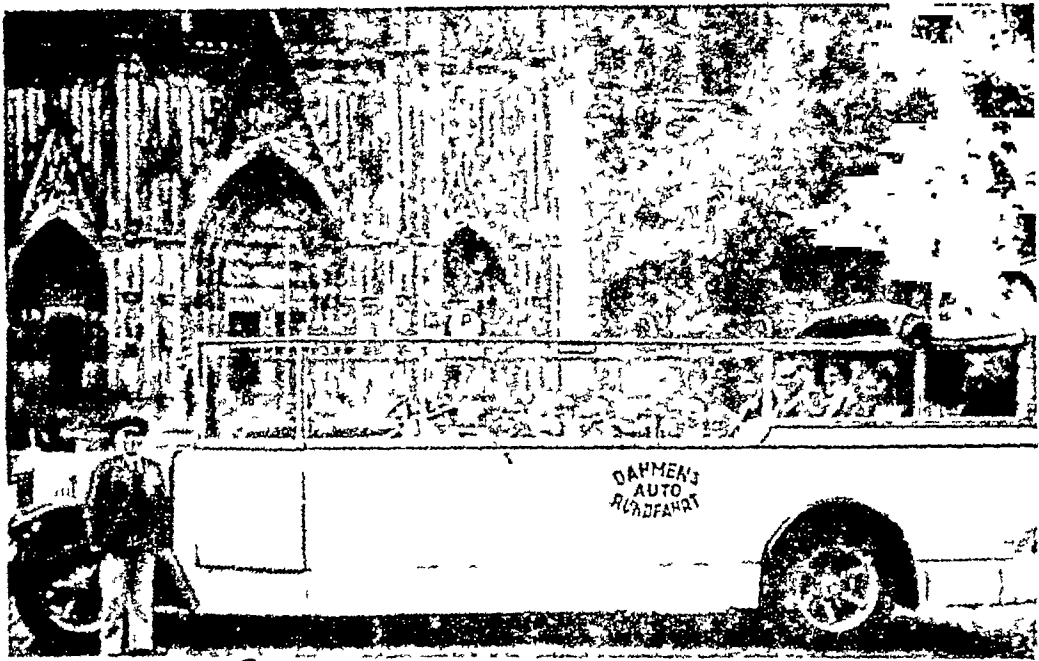
४६ मोटरबस में दर्शक-मंडली—कोलों
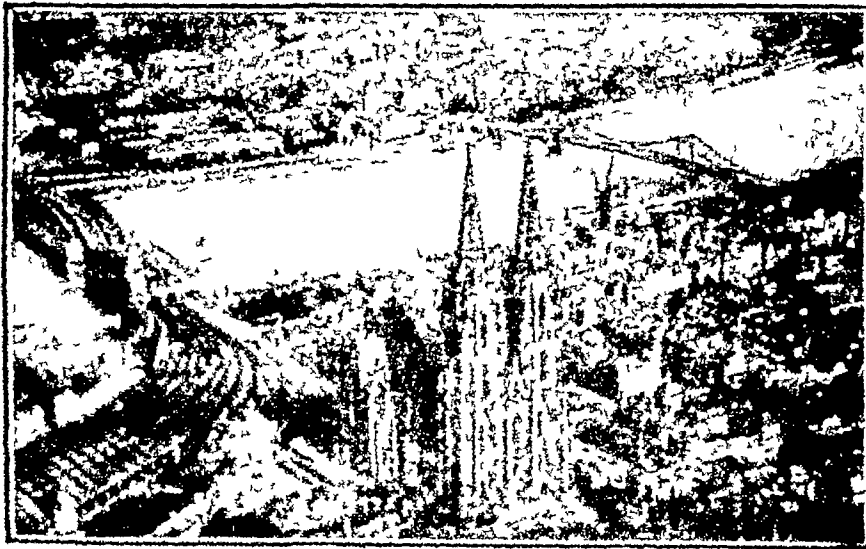
४७ कोलों-नगर, राइन-नदी तथा गिरजाघर का विहंगम दृश्य

आता है—झंडो पर, हाथ के बिल्लो पर, टोपियों पर। सरकारी अफसरों के लिये तो यह अनिवार्य मालूम होता है। लोगों की इन थोड़ी-सी विशेषताओ को छोड़कर मध्य योरप के इन सब देशों की साधारण सस्कृति, रहन-सहन, खाना-पीना, दुकान-बाज़ार, शहर-मकान आदि सब लगभग एकसाँ ही हैं। कोई आदमी सहसा नही बतला सकता कि वह लदन मे है या पेरिस मे या बर्लिन मे।

आज दोपहर हम लोगों ने यहाँ का एक प्राचीन चित्रो का सग्रहालय देखा। पेरिस का लूव्र देख लेने के बाद किसी भी साधारण सग्रहालय का नज़र पर चढना मुश्किल है। तीसरे पहर दो बजे से सात तक 'बस' पर राइन-नदी के किनारे-किनारे क़रीब ४० मील तक घूमने गए थे। रास्ते में एक लाख की आबादी का बान नाम का नगर पड़ा, जो जर्मनी के प्रसिद्व सगीतज्ञ बीथावन का जन्म-स्थान होने के कारण प्रसिद्ध है। उसके आगे एक पहाड़ी के ऊपर तक मोटर गई थी, जहाँ से चारों ओर का दृश्य दूर-दूर तक दिखलाई पड़ता था। राइन नदी की घाटी प्राकृतिक सौदर्य के लिये प्रसिद्ध है, यद्यपि यह भाग कोई असाधारण सौदर्य नहीं रखता। 'बस' का आदमी जर्मन, ॲगरेजी और फ्रासीसी मे लोगो को सब हाल समझाता चलता था। यहाँ सरदी कुछ अधिक है। लोग बताते थे, बीच मे यहाँ काफी गरमी पड़ गई। यहाँ ख़ास होटलो और बड़ी दुकानो पर ॲगरेज़ी से काम चल जाता है, यद्यपि ॲगरेज़ी की बनिस्बत इन लोगो की फ्रासीसी अधिक साफ समझ मे आती है। जर्मन-भाषा सुनने मे बड़ी कर्ण-कटु मालूम होती है।

कल सुबह साढ़े नौ बजे की गाड़ी से हम लोग बर्लिन रवाना हो रहे हैं। यह शाम को ५ बजे बर्लिन पहुँचा देगी। दिन-भर का सफर है। वहाँ का हाल अगले पत्र मे लिखूँगा।

१०—जर्मनी से दूसरा पत्र

हम लोग सोमवार २२ जुलाई को सुबह ६½ बजे कोलो से चलकर शाम को ५ बजे बर्लिन पहुँचे। एक तरह जर्मनी का देश पश्चिम के छोर से लेकर पूरब के छोर तक देखने को मिल गया। कोलों के आसपास सौ-डेढ़ सौ मील तक कारख़ाने है। गिरजाघरों की मीनारे कारख़ानों की अनगिनत चिमनियों के बीच छिप गई हैं। बस्ती भी बराबर फैली है। मध्य जर्मनी मे अधिक ऊँची पहाड़ियाँ हैं। पूरब का शेष भाग मालवा की तरह ऊँचा, ख़ूब हरा और उपजाऊ है। रेल के दोनों ओर खेतों से भरे मैदान मिले। आजकल तो गेहूँ कट रहे हैं। इधर बस्ती दूर-दूर है।

बर्लिन का स्टेशन हावड़ा, लदन, पेरिस की तरह मैला और विशाल था। बाहर निकलकर बहुत मामूली टैक्सी और इलाहाबाद-कटरे के नवी ताँगेवाले की घोड़ागाड़ियों से मिलते हुए मरियल घोड़ों की टमटमे दिखाई पड़ीं। बर्लिन का प्रथम दर्शन कुछ बहुत प्रभाव डालनेवाला नही था। यहाँ हम लोग हिंदोस्तान-हाउस मे ठहरे हैं। देश से निकले एक बंगाली मि० गुप्त इसे चलाते हैं। योरप मे हिंदोस्तानी खाने का प्रबंध लदन को छोड़कर कदाचित् केवल बर्लिन मे है। इसी मकान में भारतीय विद्यार्थियों के 'हिंदोस्तान-ऐसोसिएशन' के दो कमरे हैं। संयोग से पहले ही दिन रात को 'ऐसोसिएशन' की वार्षिक बैठक थी। क़रीब १५-२० भारतीय विद्यार्थी मौजूद थे—अधिकाश बंगाली। वातावरण वही योरपीय नक़ल का तथा द्वेष और लड़ाई-झगड़े से पूर्ण था। देखकर चित्त प्रसन्न नही हुआ। इन नक़लची नवयुवकों से कुछ आशा करना व्यर्थ है।

परसों और कल हम लोगो ने बर्लिन शहर घूमा। नगर में लंदन की विशालता और पेरिस के सौंदर्य, दोनों का समावेश है। क़ैसर और उनके पिता के महल देखे। कई बड़े अजायबघर—कला तथा चित्रों के सग्रहालय—देखे। यहाँ के पार्लिमेंट की इमारत तथा हिटलर का मकान भी देखा। शहर के मध्य मे एक पार्क बहुत ही बड़ा और सुंदर है। शहर की सजावट में स्त्रैणता
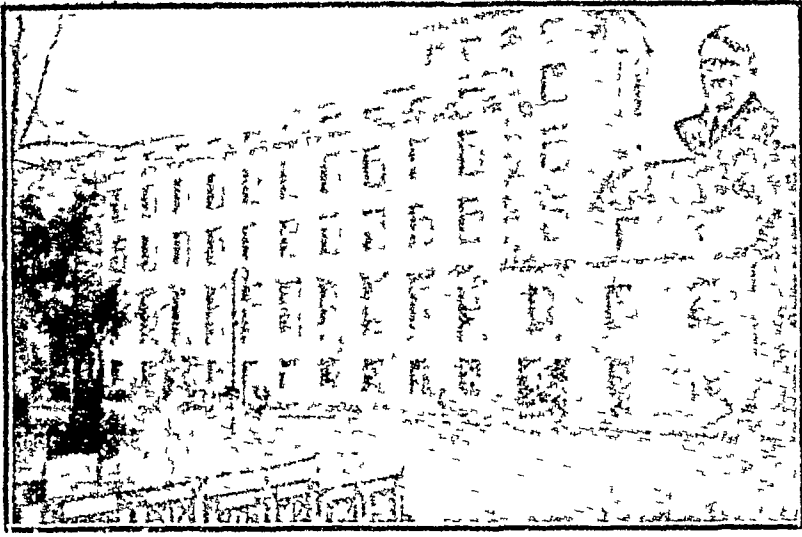
४८ हिटलर का निवास स्थान—बर्लिन
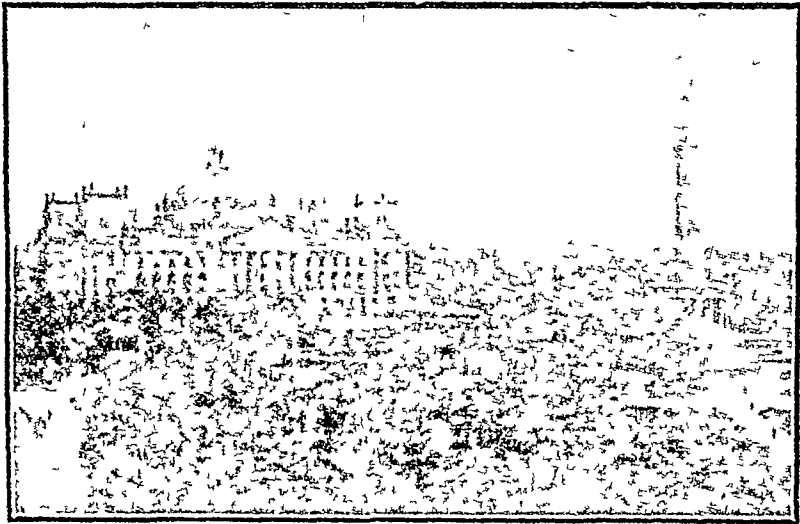
४६. पार्लियामेंट की इमारत और विजय-स्तभ—बर्लिन
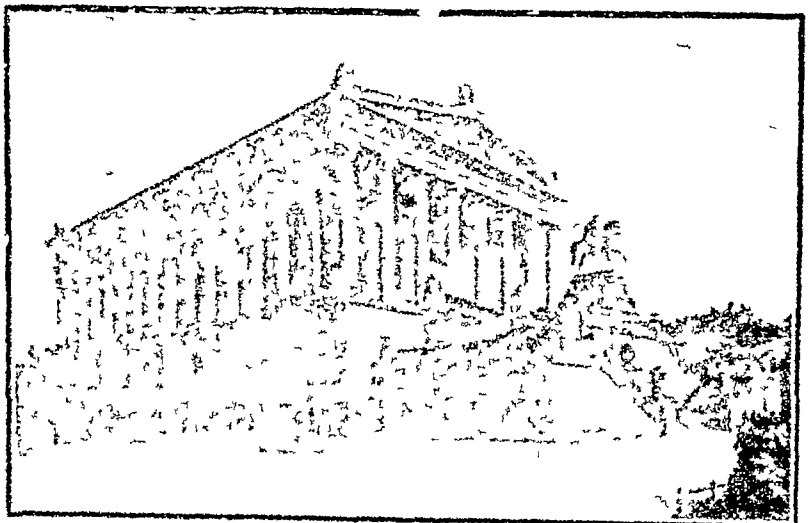
५०. राष्ट्रीय चित्रालय-बर्लिन

न होकर पुंसत्व है। पेरिस नंगी औरतों की कला-पूर्ण मूर्तियों से भरा हुआ है। बर्लिन में यहाँ के वीर पुरुषों की मूर्तियाँ हैं और यदि कहीं पौराणिक नंगी मूर्तियाँ हैं भी तो वे पुरुषों की हैं। आजकल शहर ठीक करने का प्रोग्राम चल रहा है—कहीं नई सड़कें निकाली जा रही हैं, कहीं नई ज़मीनी रेलों की सुरंगें बन रही हैं, कहीं पुरानी इमारतें नई की जा रही हैं।

यहाँ के स्त्री-पुरुष प्रायः लंबे क़द के, बड़े सिरों के और गंभीर आकृतिवाले हैं। चेहरों पर बहाली ज़रूर नज़र नहीं आती, लेकिन उसके साथ शांति और संतोष है। इसका कारण कुछ तो इन लोगों की प्रकृति मालूम होती है, और कुछ कदाचित् पिछले युद्ध की हार का परिणाम है। शायद ही किसी स्त्री के मुख पर पाउडर या ओठों पर लाल रंग दिखलाई पड़ता हो। बड़ी उम्र के प्रायः सब-के-सब लोग सन्यासियों की तरह सिर उस्तरे से साफ़ किए दिखलाई पड़े। पूछने पर पता चला कि इसका कारण किफ़ायत और सफ़ाई की सुविधा है। इन सब कारणों से यहाँ के समस्त वृद्ध लोगों की आकृति, कपड़ों को छोड़कर, श्रीनारायण स्वामीजी से मिलती-जुलती-सी दिखलाई पड़ती है।

मुझे तो बर्लिन का शहर और यहाँ की जनता पेरिस और लंदन दोनों से अधिक आकर्षक मालूम हुई। जैसे भारत के देशों में हम मध्य-देशियों के सबसे अधिक निकट गुजरात है, उसी तरह योरप के बड़े देशों में भारतीय प्रकृति से सबसे अधिक मेल खानेवाला मुझे यह देश दिखलाई पड़ा। सुसंस्कृत पश्चिमी मध्य-देश-सा समझिए।

हिटलर के नेतृत्व में ये लोग आजकल अपना देश ठीक करने में जुटे हैं। हर एक आदमी चुपचाप काम में मशगूल दिखलाई पड़ता है। हिटलर को यहाँ का महात्मा गाँधी समझिए। हिटलर न गोश्त खाते हैं, न शराब-सिगरेट पीते हैं। एक सादे मकान में तपस्या की ज़िंदगी बसर करते हैं। यहाँ की जनता के हृदय में हिटलर के लिये बहुत आदर है। नमस्कार का ढंग यहाँ दाहिना हाथ उठाकर 'Hail Hitler' अर्थात् 'हिटलर की जय' कहना हो गया है।

साधारण लोग तो उन्हे अलौकिक पुरुष या अवतार-सा समझते हैं और आँख मीचकर उनके पीछे चलने को तैयार हैं। हिटलर ने जर्मनी की नई पीढी की तो काया ही पलट दी है। राष्ट्रीय अनिवार्य शिक्षा के बाद बड़े होने पर एक वर्ष तक हरएक लड़के को—चाहे अमीर का हो, चाहे ग़रीब का—मज़दूरी का काम करना पड़ता है। इससे हर तरह का भेद-भाव मिट रहा है। उसके बाद दो वर्ष सैनिक शिक्षा लेनी पड़ती है। लड़कियो को स्कॉउट और नर्सिंग की शिक्षा दी जाती है। इस तरह सारा देश आत्मरक्षा के लिये तैयार हो रहा है। यो ये लोग युद्ध-प्रिय नही मालूम होते, लेकिन आत्माभिमानी हद दर्जे के मालूम पड़ते हैं। पिछले युद्ध की खिसियाहट को एक बार ये लोग ज़रूर निकालकर छोड़ेगे। लेकिन वह दिन अभी बहुत निकट नही है।

यहाँ स्टेट की ओर से दर्शको को घुमाने का प्रबध है। कल सुबह हम लोग एक लॅगड़े-लूले तथा अपग बच्चो का अस्पताल देखने गए थे। इसमे इनके शरीर की त्रुटियाँ ठीक की जाती हैं, तथा उपयोगी शिक्षा भी दी जाती है। अस्पताल के लिये कुछ रुपया स्टेट से मिलता है और बाक़ी चदे से पूरा किया जाता है। यहाँ के मज़दूरों और युवको की सस्थाएँ देखने को हम लोगो के पास समय नही था। ये भी अवश्य अत्यंत रोचक होगी। मि० रामकुमार और विश्वेश्वरप्रसाद आज बाक़ी म्यूज़ियम और यहाँ से ३० मील पर पाट्सडम नाम के पुराने महल देखने गए हैं। मै कुछ थका-सा था, इसलिये साथ नहीं गया। दोपहर को पड़ोस का चिड़ियाघर देखने ज़रूर चला गया था।

यहाँ एक दिन बाहर शाकाहारी रेस्टराँ में भी खाना खाया था। यह पेरिस और लदन, दोनो स्थानो के शाकाहारी भोजनालयो से बेहतर था। हम लोग जिस दिन आए थे उस दिन मौसम ठंडा था। आज तो धूप निकल आने की वजह से कुछ गरम हो गया है। कल तीसरे पहर हम लोगों का विचार यहाँ से चलने का है। रामकुमारजी लीप्ज़िग जायॅगे, और हम लोग ड्रेस्डेन होते हुए प्राग और फिर विएना। म्यूनिक मे सब लोग मिल जायॅगे।
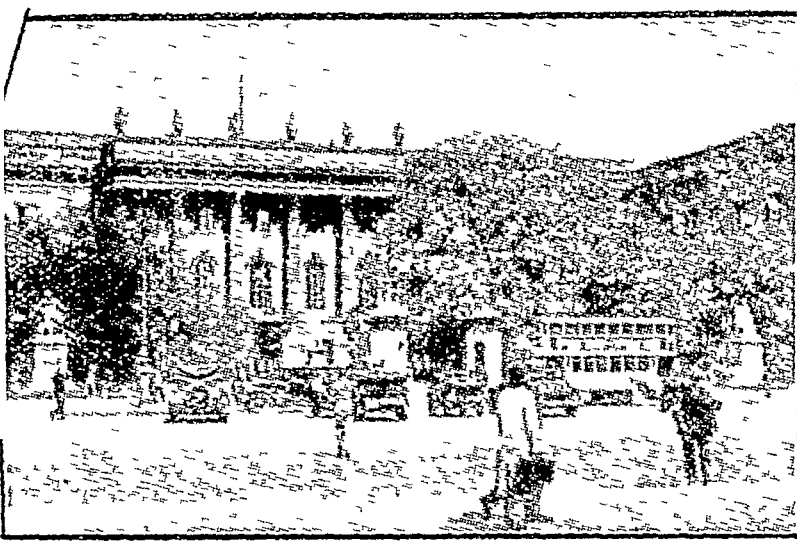
५१. विश्वविद्यालय—वर्लिन
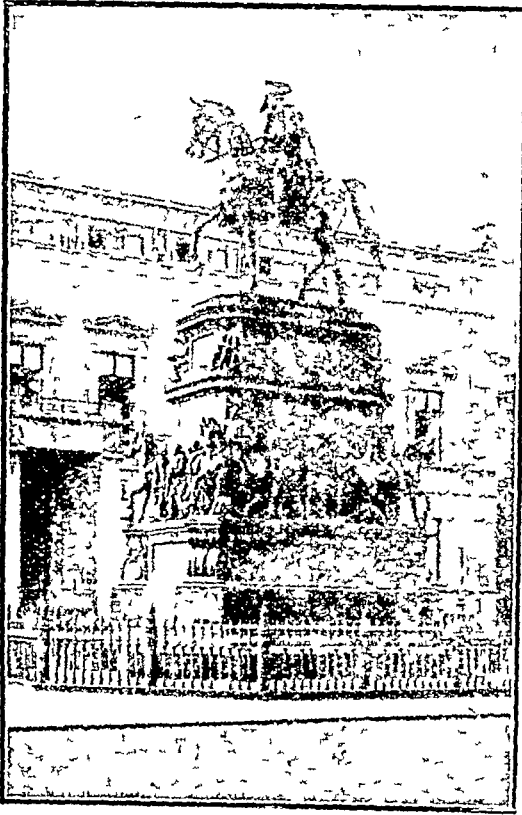
५२. फ़्रेड्रिक महान का स्मारक—वर्लिन

५३. जर्मन सेना निकलने का एक दृश्य—वर्लिन
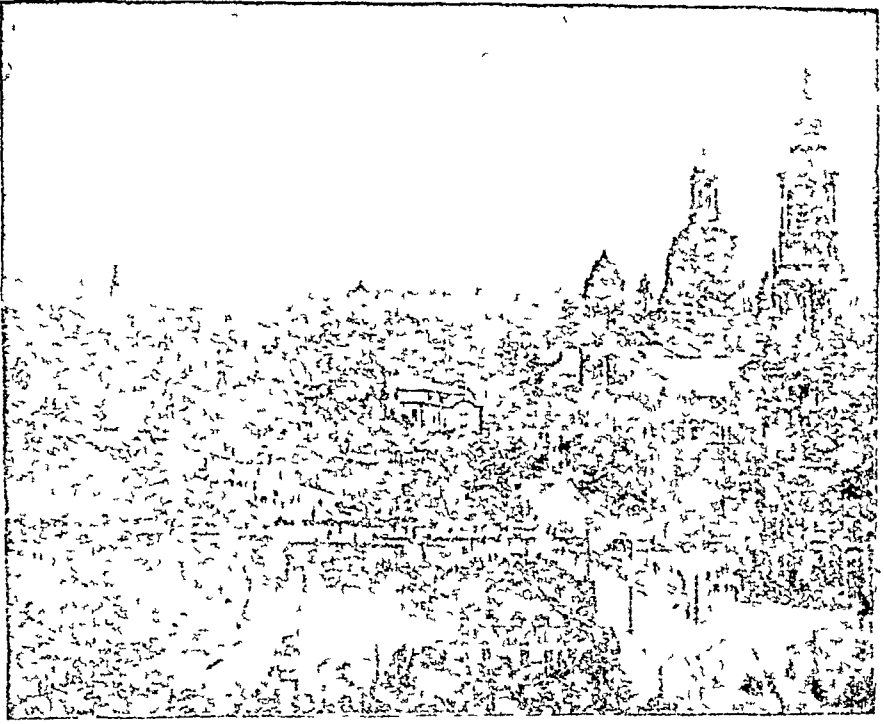
५४. ड्रेस्डेन—एल्ब-नदी के किनारे
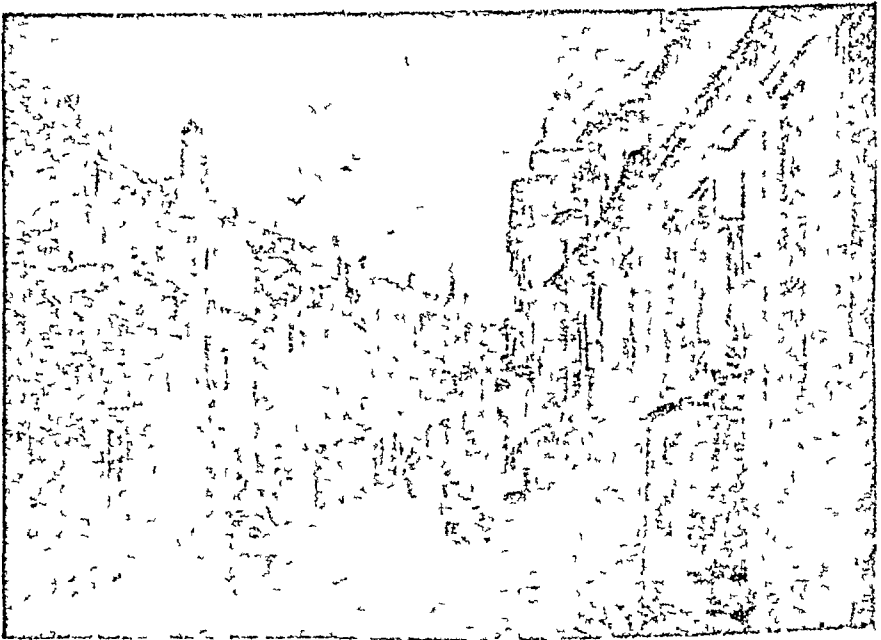
५५. प्राग की एक गली का दृश्य

११–दक्षिण-पूर्वी योरप से पत्र

मै और विश्वेश्वर प्रसाद बर्लिन से २६ जुलाई को २ बजे रवाना होकर ४ बजे ड्रेस्डेन पहुँच गए। रामकुमारजी लीप्जिग चले गए हैं और वहाँ से म्यूनिक पहुँच जायँगे। जिस तरह बर्लिन जर्मनी के प्रशिया-राज्य की राजधानी थी, उसी तरह ड्रेस्डेन सैक्सनी-राज्य का मुख्य नगर था। सैक्सनी-राज्य को ऐसा समझिए जैसे अपने यहाँ अवध की नवाबी और इसीलिये लखनऊ की तरह यहाँ भी शाही महल और इमारते काफी मौजूद हैं अब तो उनमे अजायबघर या दफ़्तर हैं।

ड्रेस्डेन नगर बर्लिन की अपेक्षा पुराना और शात है। एल्ब-नदी के किनारे पहाड़ियो से घिरा होने की वजह से रमणीक मालूम होता है। चारो ओर का दृश्य अजमेर की याद दिलाता है, और नदी के किनारे का दृश्य आगरा की जमुना का। यहाँ हम लोगो ने प्राचीन चित्रो का एक प्रसिद्ध सग्रहालय देखा, जिसमे रैफेल की बनाई मैडोना की तसवीर है। इस चित्र का कमरा पूजागृह-सा हो गया है। जर्मनी का सबसे प्रसिद्ध स्वास्थ्य-सबधी अजायबघर भी यही है। वहाँ भी हम लोग गए थे। यह सग्रहालय अत्यत शिक्षाप्रद है। ड्रेस्डेन मे आजकल पोलैंड की आधुनिक कला की नुमाइश हो रही है। उसे देखने से पता चला कि पूर्वीय योरप की सस्कृति पश्चिमी योरप की सस्कृति से काफी भिन्न है। ड्रेस्डेन ऐसी जगह है, जहाँ आदमी आराम से चार-छः दिन पड़ा रह सकता और घूम-फिर भी सकता है। लेकिन हम लोगो के प्रोग्राम मे पड़े रहने के लिये जगह कहाँ ?

२७ को ४ बजे शाम को ड्रेस्डेन से चलकर ८ बजे चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग, जिसे यहाँ प्राहा कहते हैं, पहुँचे। महायुद्ध के बाद यह छोटा-सा जुड़वा राज्य बना है। इसे ऐसा समझिए जैसे कमायूँ-गढवाल का प्रदेश अपने प्रात से अलग कर दिया जाय और ये दोनो मिलकर अपना स्वतत्र प्रात क़ायम कर ले। यह प्रदेश अधिक पहाड़ी है, लेकिन पहाड़ी का मतलब बुदेलखड

जैसे पहाड़ी प्रदेश से है, हिमालय-जैसे पहाड़ी प्रदेश से नहीं। ड्रेस्डेन से प्राग तक का रेल का रास्ता बराबर एल्ब-नदी तथा अंत में उसकी एक सहायक नदी के किनारे-किनारे आया है, इसलिये बहुत सुहावना मालूम होता है। प्राग में मुझे कोई भी चीज़ उल्लेखनीय नहीं मालूम पड़ी। नगर एल्ब की एक शाख़ के दोनो किनारो की पहाड़ियो पर बसा है। शहर मे एक पुराने क़िले के अदर की एक-दो इमारतें ज़रूर कुछ अच्छी हैं। नगर मे एक असाधारण बड़ी घड़ी है, जिसका हाल मिलने पर सुनाऊँगा। लोग भी पहाड़ी आदमियो की तरह ठिंगने और कुछ अजब-से लगते हैं। चार-पाँच सौ वर्ष बाद आस्ट्रिया के साम्राज्य से स्वतत्र होने के कारण अपने देश की पुरानी स्मृतियो को चुन-चुनकर ये लोग जमा कर रहे हैं, और उन्हें बड़े चाव से दिखाते हैं। विदेशियों को वे इतनी आकर्षक नही मालूम हो सकती, यह इनकी समझ मे नहीं आता। योरप की यात्रा में प्राग छोड़ा जा सकता है।

चेकोस्लोवाकिया में पहुँचते ही इंगलैंड, फ़्रास, जर्मनीवाला असली योरप समाप्त होने लगता है, और एशिया के पूर्वी लक्षण प्रारंभ हो जाते हैं। खेतो में पहली बार हलों में बैल भी जुते हुए दिखलाई पड़े और पहाड़ियों पर गड़रियों के लड़के बकरी चराते नज़र आए।

प्राग से इतवार २८ को शाम की ४½ बजे की गाड़ी से चलकर रात को १०½ बजे जब विएना पहुँचे तो शहर के क़रीब के कुछ पुराने मकानों को देख कर ऐसा लगा जैसे लखनऊ पहुँच रहे हों—क़ैसरबाग़ के ढंग के मकान, कहीं-कही मकानों में वराडे तक दिखलाई पड़ते थे।

विएना नगर आधुनिक योरप के प्राचीन नगरो मे से एक है। कई सौ वर्ष तक यह आस्ट्रिया के साम्राज्य की राजधानी रहा है। इसे योरप की मुस्लिम-कालीन दिल्ली समझिए। शहर विशाल है, बड़े-बड़े महलों से पूर्ण है। लंबी-लबी बाज़ारे हैं जिनमे कारीगरी का तरह-तरह का सामान बिकता है। योरप की सबसे बड़ी डैन्यूब-नदी, जो पटना की गंगा से मिलती-जुलती दिखलाई पड़ती है,
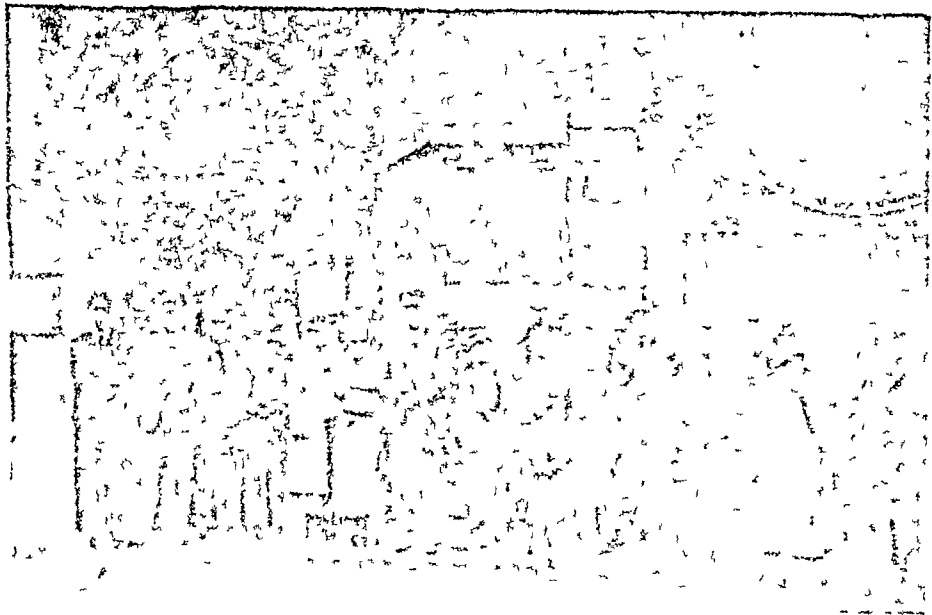
५८. डैन्यूब नदी के किनारे विएना नगर का दृश्य

५६. विएना का एक प्राचीन महल
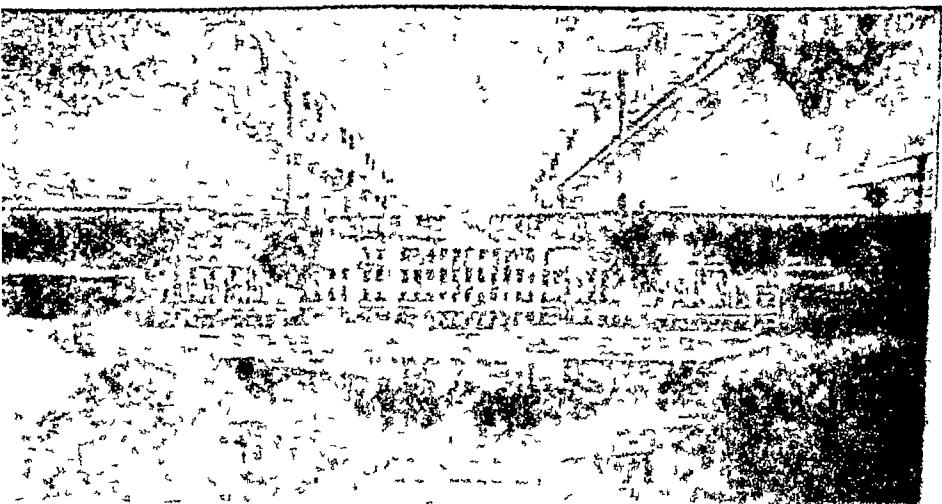
६०. दक्षिण-जर्मनी की ग्रामीण स्त्रियों का पहनावा

६१. म्यूनिक—वह स्थान जहाँ हिटलर के चोट लगी थी

निकट ही है। यह नदी भी तिजारत का एक प्राचीन मार्ग रही है। लेकिन अब साम्राज्य के नष्ट हो जाने और पड़ोस के जर्मनी आदि नए राष्ट्रों के बढ़ जाने की वजह से विएना में सुनसान-सा लगता है। लोग भी बिगड़े रईसों की तरह ढीले-ढाले, सुस्त और ग़रीब-से दिखलाई पड़ते हैं। यों आस्ट्रिया के लोग जर्मनी से भिन्न नहीं हैं। आस्ट्रिया मे जर्मन-भाषा ही बोली जाती है। जर्मनी और वर्तमान आस्ट्रिया का संबंध संयुक्तप्रांत तथा हिंदुस्तानी मध्यप्रांत की तरह समझिए। लेकिन आस्ट्रिया के जर्मन थके-से मालूम होते हैं। किसी बिगड़े दिनवाले योरप के आधुनिक नगर को देखने की इच्छा हो तो विएना को देख लेना चाहिए।

३० जुलाई को विएना से १० बजे सुबह चलकर शाम को लगभग ७½ बजे दक्षिण-जर्मनी के प्राचीन राज्य बैवेरिया की राजधानी म्यूनिक पहुँचे। दिन का सफ़र बहुत अच्छा रहा। दोनों तरफ़ बराबर पहाड़ों, जंगलों और खेतों का दृश्य था। कुछ-कुछ तराई मे लालकुआँ से काशीपुर के सफ़र की याद आती थी। पहाड़ मालवा के पहाड़ों से मिलते-जुलते थे। म्यूनिक पहुँचकर हम लोग एक बार फिर जर्मनी की मुस्तैद दुनिया मे लौट आए। म्यूनिक नगर नाज़ी-पार्टी का केंद्र रहा है। ख़ासा बड़ा शहर है। एक स्थान पर कुछ वर्ष पहले पार्टियों के झगड़े में हिटलर ज़ख़्मी हो गए थे। वहाँ एक स्मारक बना दिया गया है, और दो सिपाही बराबर खड़े रहते हैं। जगह बाज़ार मे है। सड़क पर निकलने-वाला हर एक आदमी आदर प्रकट करने के लिये उस जगह बराबर हाथ उठाए रहता है। एक तरह का कटरे का कालीमाई का थान समझिए। यहाँ पर लड़ाई का अजायबघर साधारण निकला। पड़ोस मे एक घाटी का दृश्य अवश्य बहुत ही रमणीक है। अब कल सुबह हम तीनों स्विटज़रलैंड को रवाना हो रहे हैं। दो दिन ज़्यूरिच और तीन दिन जेनेवा रहने का विचार है। वहाँ का हाल अगले पत्र में लिखूँगा।

म्यूनिक अन्य शहरों से कुछ ठंडा है, कदाचित् पहाड़ क़रीब होने की वजह से। स्विटज़रलैंड शायद कुछ और ठंडा निकले।

१२–स्विटज़रलैंड से पत्र

मेरा पिछला म्यूनिक से लिखा पत्र मिला होगा। पहली अगस्त १९३५ को सुबह ६ बजे हम लोग स्विटज़रलैंड को रवाना हुए थे। म्यूनिक के चारो ओर का प्रदेश बिलकुल समतल था, लेकिन धीरे-धीरे पहाड़ी प्रदेश शुरू हो गया। स्विटज़रलैंड में प्रवेश करने पर हम लोगो को कोई भारी परिवर्तन नही दिखलाई दिया, क्योंकि स्विटज़रलैंड का दक्षिणी भाग अधिक पहाड़ी नही है, न विशेष सुदर ही है। हम लोगो ने ज़्यूरिच मे ठहरने को सोचा था, किंतु ४ बजे के लगभग जब ज़्यूरिच गाड़ी पहुँची तो चिमनी और ट्रैमवाली भारी बस्ती को देखकर हम सबकी राय सीधे आगे चल देने की हुई। सभ्यता से ऊबकर हम लोग प्राकृतिक सौदर्य की खोज मे थे। ज़्यूरिच स्विटज़रलैंड का सबसे बड़ा तिजारती शहर है। यहाँ की झील काफी बड़ी है, लेकिन पहाड़ियाँ दूर होने के कारण दृश्य बहुत आकर्षक नही है। ज्यूरिच के आगे प्राकृतिक दृश्य अधिक सुदर है—ऊँचे पहाड़, नीची घाटियाँ, विशाल झीले और लबी सुरंगे। रेल बदलकर घटे-भर में हम लोग ल्यूसर्न पहुँच गए। स्टेशन से बाहर निकलते ही ऐसा लगा मानो नैनीताल मे मोटर-स्टैंड के क़रीब झील के किनारे आ निकले हो। अतर केवल इतना था कि यहाँ का दृश्य अधिक बड़े पैमाने पर था—अधिक विशाल झील, चौड़ी घाटी तथा विस्तृत शहर। ल्यूसर्न का मौसम भी बिलकुल नैनीताल की ही तरह था। एक विशेष वार्षिक उत्सव होने के कारण रात को ख़ूब रोशनी, चहल-पहल और रौनक़ थी।

ल्यूसर्न के चारो ओर घूमने जाने की बहुत-सी जगहें हैं। दूसरे दिन हम लोग यहाँ के चीना पीकपिलाट्रुम-पहाड़ की सैर को गए। एक घटे झील पर स्टीमर मे चलना पड़ा, और उसके बाद एक घटे की चढ़ाई थी। यहाँ एक विशेष प्रकार की रेल चलती है। दोनों पटरियों के बीच में एक तीसरी काँटेदार
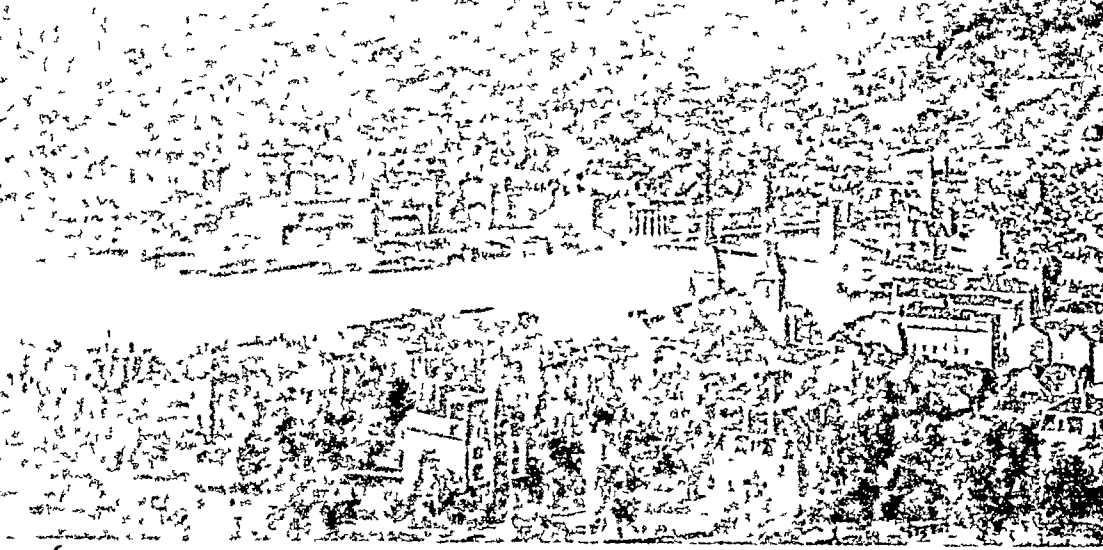
६२. स्विटज़रलंड का नैनीताल—ल्यूसर्न

६३. पिलाटुस-पहाड़ पर जानेवाली तीन पटरियों की विशेष रेल

६४. स्विटज़रलैंड की राजधानी—वर्न

६५. वर्न की पुरानी बस्ती का बाज़ार
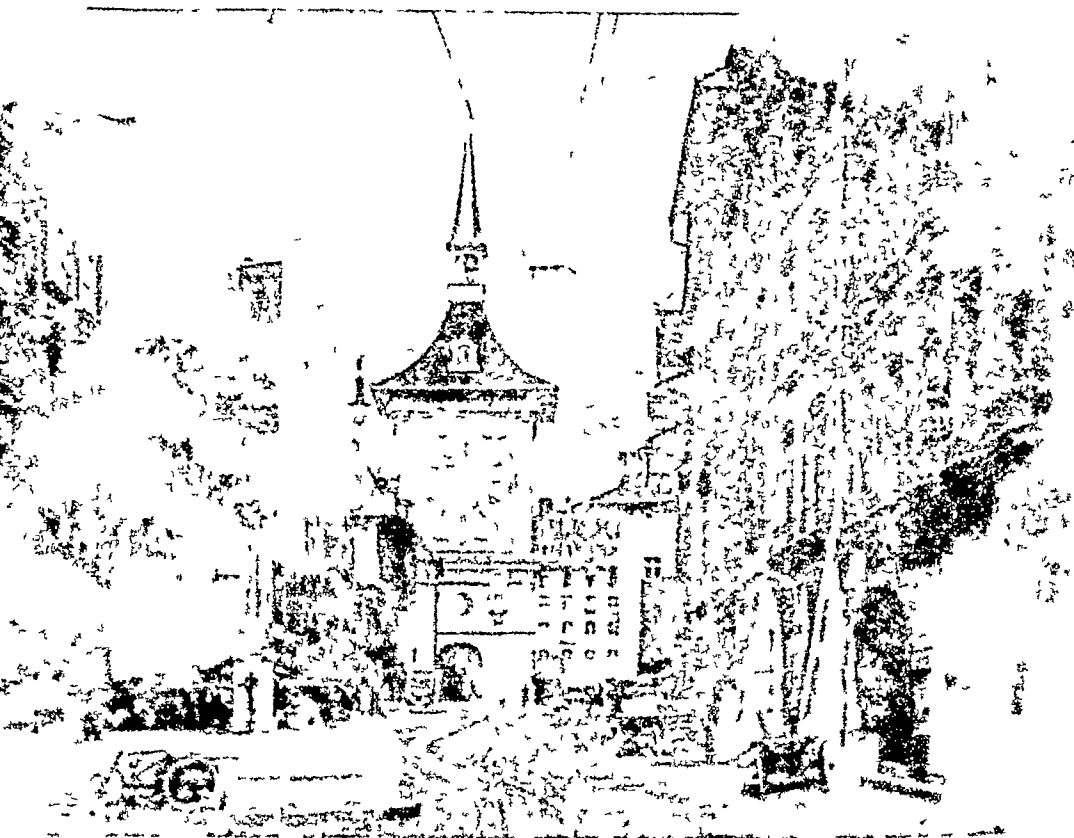
पटरी है, जिसमें एक तीसरे बीच के पहिये के काँटे हिलगे रहते हैं। रेल का सिर्फ एक छोटा-सा डिब्बा रहता है, जिसमे बैठने की जगहे बराबर ऊँची होती जाती हैं। पीछे से एक छोटा-सा एजिन धक्का देता है। इस लिफ्टनुमा रेल की रफ़्तार सड़क कूटने के एजिन की रफ़्तार से ज्यादा न होगी, लेकिन चढाई अक्सर ४५ डिगरी से भी ज्यादा होने के कारण इस धीमी रफ़्तार मे भी बाज़ लोग घबराते थे। यह रेल यहाँ एक नई चीज़ थी। बादल हो जाने की वजह से ऊपर विशेष आनंद नही आया। पिलाटुस-पहाड़ की चोटी ७,००० फीट ऊँची है, लेकिन स्विटज़रलैंड के ७,००० फीट होने की वजह से ठड यहाँ मसूरी से भी कही अधिक थी। एक-दो जगह तो जाड़े की बर्फ अभी तक बाक़ी पड़ी थी। शाम को जल्द ही हम लोग ल्यूसर्न वापस चले आए, क्योकि आतिशबाज़ी का वार्षिक उत्सव था। चारो तरफ़ से हज़ारो आदमी तमाशा देखने आए थे। बूँदाबाँदी होने की वजह से रौनक़ कुछ कम रही। आतिश-बाज़ी अच्छी थी यद्यपि पद्रह मिनट ही छूटी। इस ज़रा-से तमाशे के लिये लोग मीलो से आए थे और घंटो खड़े रहे।

इतवार, चौथी तारीख़ को सुबह ८ बजे हम लोग स्विटज़रलैड की राज-धानी बर्न होते हुए जेनेवा को रवाना हुए। १० बजे हम लोग एक गाड़ी से बर्न उतर गए। स्टेशन पर ही असबाब जमा करके शहर का एक चक्कर लगाया। स्विटज़रलैंड की पार्लिमेंट की इमारत यहाँ ही है। शहर एक गहरी घाटी के इधर-उधर पहाड़ी पर बसा है। शहर के दोनो हिस्सों को मिलाने के लिये बड़े ऊँचे-ऊँचे पुल हैं। जगह सुथरी है। यहाँ का पुराना बाज़ार अपने ढंग का निराला है। पतली सड़क के दोनो ओर बहुत लबे-लबे नीचे बराडे चले गए हैं। इन्ही मे छोटी-छोटी दुकाने खुलती हैं। २ बजे की गाड़ी से रवाना होकर ५ बजे हम लोग अतर्राष्ट्रीय परिषद् के केंद्र जेनेवा पहुँचे।

जेनेवा इसी नाम की झील के किनारे उस पतले हिस्से पर बसा है, जहाँ से रोन-नदी निकलती है। यह झील बहुत ही बड़ी है। चौड़ी तो इतनी अधिक

नही है कि दूसरा किनारा न दिखलाई पड़े लेकिन लबाई बहुत काफी है। आधी झील से रेल उसके किनारे आ गई थी, किंतु इस आधे हिस्से ही को ख़त्म करने में एक घटे से अधिक लग गया। ऐसी बड़ी झील के किनारे पर बसे होने के कारण जेनेवा समुद्र-तट के नगरो के समान लगता है। झील के किनारे लबी साएदार सड़के, नहाने के स्थान, नावे, स्टीमर, तथा दूर पर पहाड़िये हैं। शहर काफी बड़ा है। यहाँ की भाषा फ्रासीसी है। पहला दिन घूमने ही मे कट गया। दूसरे दिन सुबह कुछ घड़ियों की ख़रीदारी हुई, तथा तीसरे पहर मि० रघुनाथ राउ से मिलने अतर्राष्ट्रीय मज़दूर-सघ के दफ्तर गए। मज़दूरो के काम के घटे घटाने वग़ैरह के लिये यह संघ यत्न कर रहा है। इस दफ़्तर मे मि० राउ एकमात्र भारतीय है। यह महाराष्ट्र युवक हैं, एक फ़ासीसी महिला से विवाह कर लिया है और अब यहाँ के ही निवासी हो गए हैं। उनकी स्त्री आजकल पहाड़ गई हुई थी। इस सघ के निकट ही 'लीग ऑफ नेशस' का भी दफ्तर है। लीग की नई इमारत इस साल पूरी हो जायगी। वह भी दूर नही है।

* * *

यह पत्र मै जेनेवा-झील पर स्टीमर मे बैठा पूरा कर रहा हूँ। आज बुधवार ७ अगस्त को सुबह रामकुमारजी पेरिस के लिये रवाना हो गए। मै और विश्वेश्वर प्रसाद ६½ बजे के स्टीमर से झील के दूसरे सिरे वील-नव जा रहे हैं। वहाँ ११½ बजे पहुँचकर, १२ बजे की रेल से चलकर इटली के प्रथम बड़े नगर मिलान शाम के ६ बजे पहुँच जायँगे। जेनेवा से वेनिस का सफर बहुत लबा होने की वजह से मिलान मे रातभर रुक जाने का विचार है। वहाँ का गिरजाघर बहुत प्रसिद्ध है। कल सुबह अगर समय मिला तो उसे देखने का भी विचार है। झील का यह चार-पाँच घटे का सफर बहुत आनद का है। स्टीमर कई सौ आदमियो के बैठने का है। हर १५-२० मिनट पर घाटो पर रुक-रुककर सवारियाँ उतारता-चढ़ाता चलता है। किनारे के गाँवो, खेतों तथा पहाड़ियों

६६. जेनेवा झील के किनारे स्टीमर की प्रतीक्षा में लेखक

६७. अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ का दफ़्तर—जेनेवा
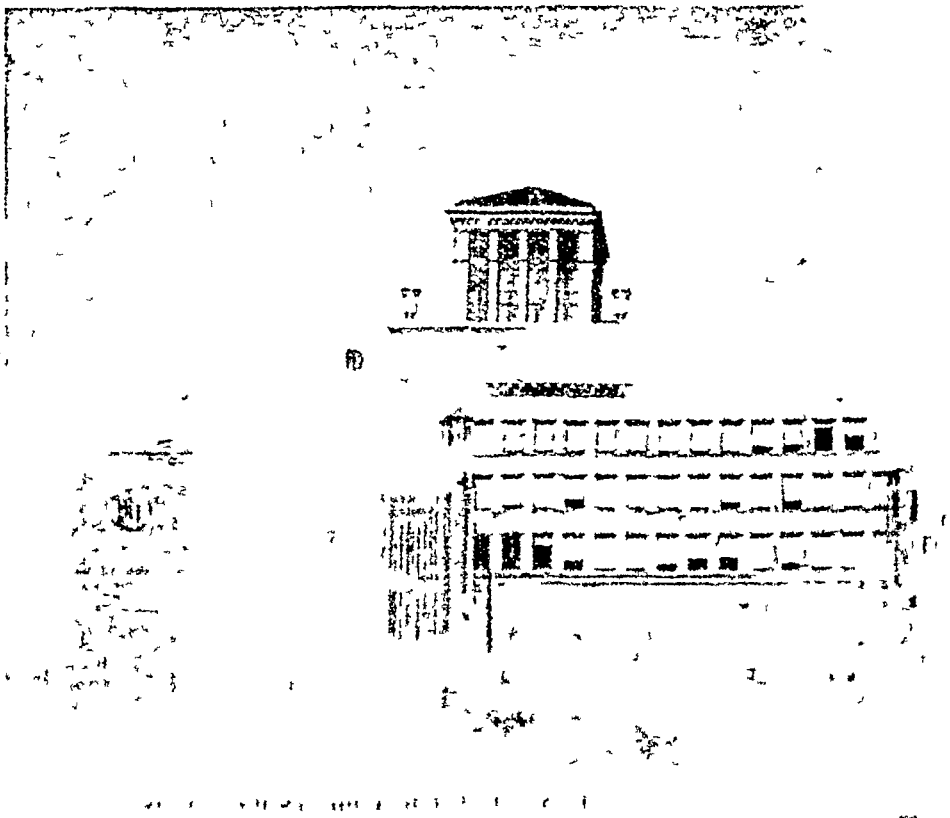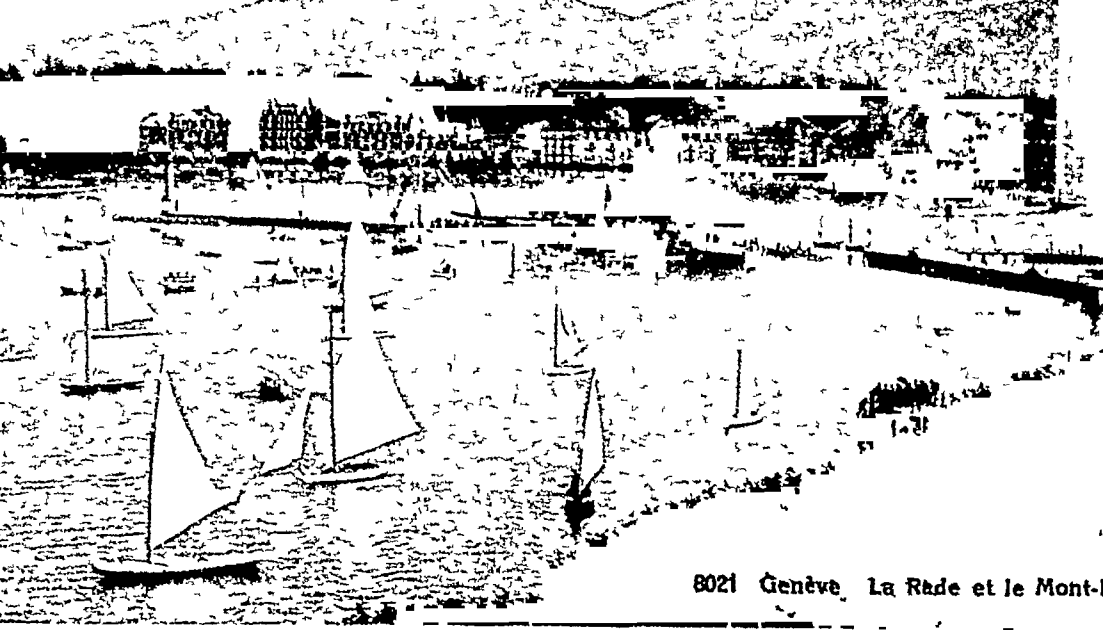
६८ अतर्राष्ट्रीय सघ का केद्र—जेनेवा

का दृश्य ख़ूब निकट से देखने को मिल रहा है। धूप होने की वजह से घमाने का आनद भी बहुत दिनो बाद मिल रहा है।

स्विटज़रलैंड का विशेष सौदर्य पहाड़पर बड़ी-बड़ी झीले होने के कारण है। अगर उदयपुर का मौसम नैनीताल की तरह होता तो इससे मिलता-जुलता आनद वहाँ मिल सकता था। फिर सबसे बड़ी बात यहाँ सुविधाओ की है। पहाड़ की बर्फीली चोटियों तक रेले जाती हैं, होटल हैं, तथा खेलने, घूमने-फिरने का पूरा प्रबध है। प्राकृतिक सौदर्य और सुविधाओं के मिश्रण के कारण योरपीय लोग और उनकी नक़ल मे भारतीय यहाँ बहुत आते हैं। यहाँ जर्मन, फ्रेंच और इटालियन तीन भाषाएँ चलती हैं। शहरों मे, दुकानो, होटलों और रेल वग़ैरह के दफ़्तरों मे अँगरेज़ी से भी काम निकल जाता है। रेल के डिब्बों मे सूचनाएँ आदि यहाँ की तीनों भाषाओं मे लिखी दिखलाई पड़ीं। हम लोग पहाड़ों की चोटियोंवाले भागों मे नही जा सके। वहाँ जाने के लिए योरप के जाड़ों का सामान साथ में होना चाहिए था।

१३–इटली से पहला पत्र

विश्वेश्वर प्रसाद शनिवार को वेनिस से जहाज़ पर चढ़ लिए। 'कोंटोरोसनो' 'विक्टोरिया' से ड्योढ़ा बड़ा होगा। जहाज़ के छूटने का वक्त ६ बजे शाम को था, लेकिन छूटा ८ बजे के बाद—वही इटैलियन घिसघिस। सुनीति बाबू के सिवा और भी कई परिचित लोग जहाज़ पर विश्वेश्वर प्रसाद को मिल गए। विश्वास है उनका समय अच्छा कटेगा।

मै कल १½ बजे वेनिस से चलकर, एक जगह रास्ते में रेल बदलकर शाम को ६ बजे यहाँ फ्लारेंस पहुँच गया। रेल मे ही अपनी यूनिवर्सिटी के डॉ० दस्तूर से मिलना हो गया। यह भी फ़्लारेंस आ रहे थे, और यहाँ से पेरूज़िया जायँगे। मि० दस्तूर पारसी हैं। अपने यहाँ अँगरेज़ी-डिपार्टमेंट में रीडर हैं, पिछले साल डॉक्टर हुए हैं। एक साल ऑक्सफर्ड रहकर वहाँ अँगरेज़ी का विशेष अध्ययन करना चाहते हैं। इटैलियन जहाज़ का रियायती टिकट लेने के कारण इन्हें पेरूज़िया में एक महीने इटैलियन-भाषा का अध्ययन करना होगा। मि० दस्तूर की स्त्री भी साथ हैं। यह अजब सयोग हुआ कि विश्वेश्वर प्रसाद का साथ छूटते ही दस्तूर साहब का साथ हो गया।

इटली का विस्तृत हाल तो मैंने अभी सुनाया ही नहीं। पिछले पत्र में शायद जेनेवा तक का हाल था। जेनेवा की झील के बाद रेल का सफर काफी ऊँचे पहाड़ो के बीच से था—ज्यादातर रोन नदी की तंग घाटी मे होकर। दर्जनो सुरगे पड़ी होंगी। आख़िरी सुरंग, जिसे पार करके हम लोग इटली में आ गए, नौ मील लबी बताई जाती है। क़रीब १२ मिनट रेल पूरी रफ़्तार से सुरग से गुज़रती रही। कुछ सुरगे बराडेनुमा थी—एक तरफ दरवाज़े कटे हुए थे, जिनसे घाटी की तरफ का दृश्य झाँकी की तरह दिखलाई पड़ता जाता था। बरफ से ढके पहाड़ देखने को कहीं नहीं मिले। इटली के प्रथम प्रसिद्ध नगर मिलानो

६९. मिलानो का स्टेशन
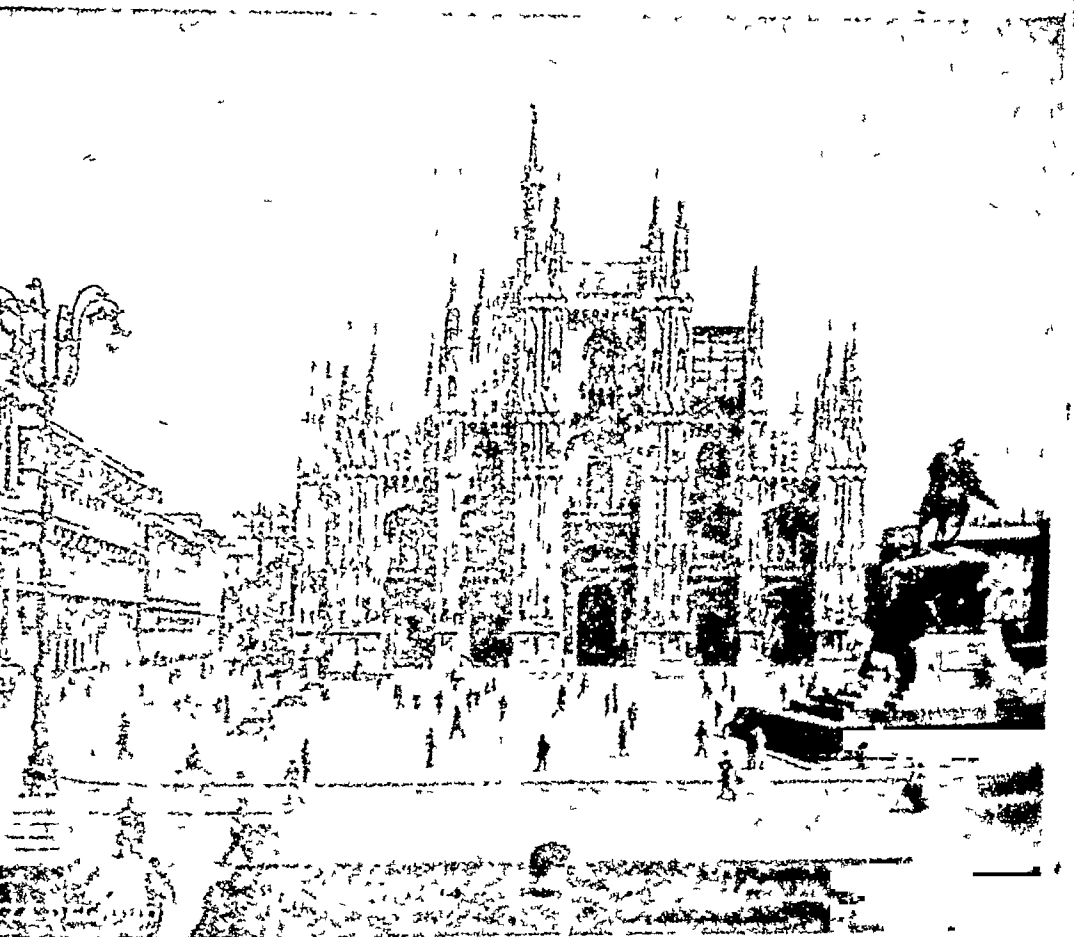
७०. मिलानो का प्रसिद्ध गिरजाघर
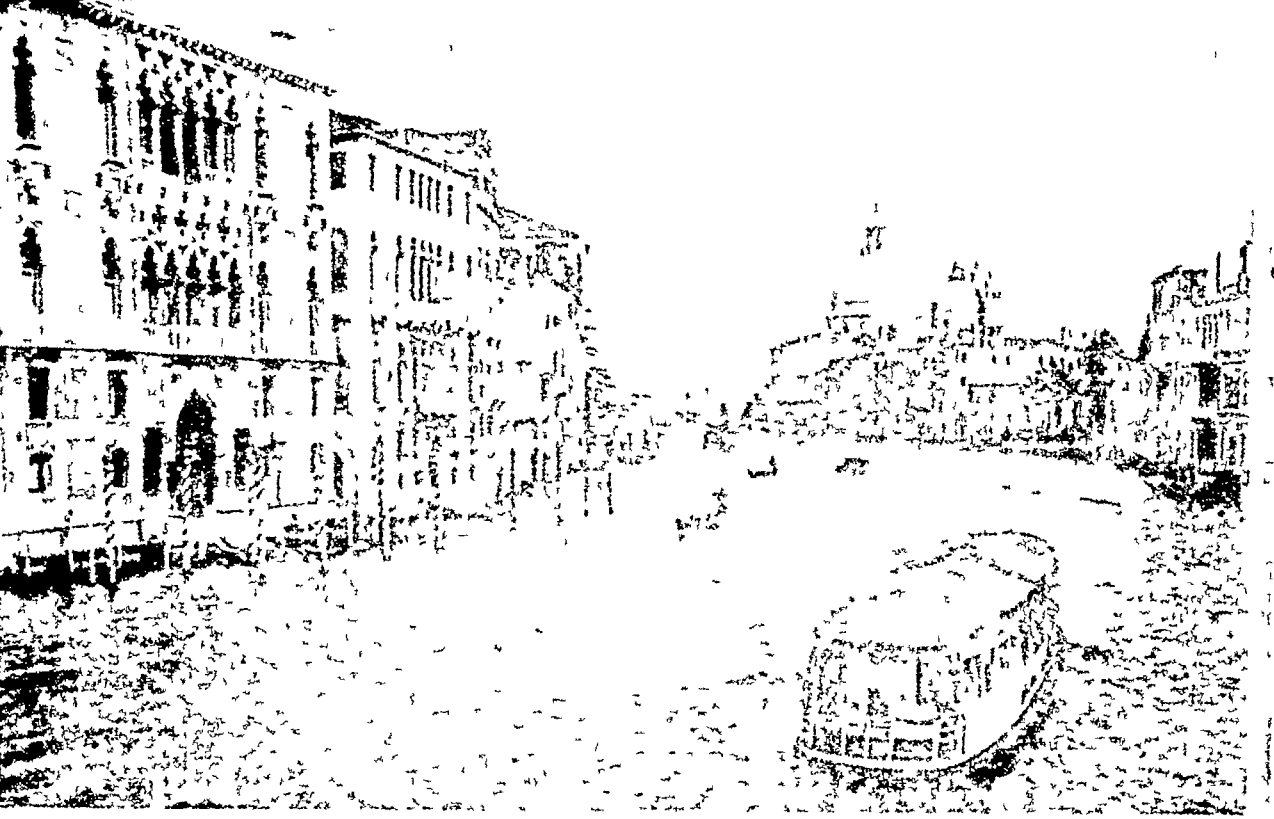
७१. बड़ी नहर का एक दृश्य—वेनिस

७२. वेनिस के एक प्रसिद्ध चौक में कबूतरों को दाना खिलाया जा रहा है

मे रुककर हम लोगो ने वहाँ का प्रसिद्ध गिरजाघर देखा। इमारत वास्तव में भव्य है।

स्विटज़रलैंड से जब उत्तर इटली मे हम लोगो ने प्रवेश किया तो ऐसा मालूम हुआ मानो अलमोड़ा-नैनीताल के पहाड़ से उतरकर बहेड़ी-बरेली के बीच में सफर कर रहे हों—सपाट मैदान, जिसमे पहाड़ों या ऊँची-नीची ज़मीन का नाम नही, मक्के के खेत, जिनमे कही-कहीं लोग ज़मीन मे बैठे काम कर रहे थे, बाग़-बग़ीचे, ग़रीब बस्तियाँ, चटक धूप, नीला आकाश। एक दिन को हम लोग मिलानो रुक गए थे, दूसरे दिन वेनिस चले आए। इटली के आदमी भी हम भारतीयों से मिलते-जुलते हैं—फटे हाल, कमज़ोर, बिगड़े रईस-से। यहाँ के शहर भी बहुत बातों मे हम लोगो के शहरों के समान हैं—बाहर प्लास्टर किए और रंगों से रँगे हुए ऊँची छतो के मकान जिनमे खुली छतों पर अक्सर गमले रक्खे दिखलाई पड़ते थे। कही-कही बड़े-बड़े आँगन और बराडे तक हैं। पतली गलियाँ, मोहल्लों मे जगह-जगह चौक जहाँ शाम को बच्चे खेलते-कूदते हैं और औरते बैठकर गप-शप करती हैं, सड़कों पर छिड़काव, गली मे तरबूज़-वालो की दुकाने जिन पर खड़े-खड़े लोग तरबूज़ की फाँके लेकर खाते हैं, मच्छड़-मक्खी—मतलब यह कि किसी बात की कमी नहीं।

वेनिस में हम लोगो को बड़ी निराशा हुई। वेनिस के जो क़िस्से सुन रक्खे थे उनके हिसाब से हम लोग यह समझते थे कि शानदार नहरो के किनारे आलीशान महल खड़े होंगे। यह भी सुन रक्खा था कि वेनिस मे सिर्फ नहरे-ही-नहरे हैं, हर जगह नाव मे ही जाना पड़ता है। लेकिन वेनिस बहुत ही पुराना गिरताऊ शहर निकला। छोटी या मझोली ईंट के खपरैले पुराने मकान जिनके प्लास्टर उखड़ गए हैं और जो खुद झुक गए हैं लखनऊ के नवाबी ज़माने के मकानों की याद दिलाते हैं (लखनऊ की इमारतो मे इटली के कारीगरो का हाथ रहा हो तो आश्चर्य नही क्योंकि दोनो एक ही नमूने के मालूम होते हैं)। बहुत ही तग और टेढ़ी-मेढी गलियाँ कहीं-कहीं बनारस की गलियों को भी

मात करती थी। यह सच है कि वेनिस में कोई ऐसी बड़ी सीधी सड़क नही, जिस पर मोटरें और ट्रैम चल सकें, लेकिन वैसे सकरी सड़कों और गलियों की कमी नही। साधारणतया आदमी हर जगह ख़ुश्की से ही आते-जाते हैं। वास्तव में वेनिस बंबई की तरह टापू पर बसा है, या यों कहना चाहिए कि टापुओं के समूह पर बसा है, इसलिये कुछ तो कुदरती पानी के रास्ते हैं और बहुत-से मसनूई बना दिए गए हैं। बड़ी नहरों के किनारे के मकानो को देखकर हरिद्वार के गगा के किनारे के मकानों का स्मरण हो आता था (वेनिस में काशी की तरह ऊँचे घाट नही हैं) और पतली नहरों के किनारे के मकान बरेली के बरसाती गदे नालो के किनारे के मकानो का स्मरण दिलाते थे। लेकिन वेनिस कारीगरी का अब भी केंद्र है। इस बात मे इसे काशी या जयपुर की तरह समझिए। काँच के काम के लिये तो इसकी विशेष प्रसिद्धि है। वेनिस के दिन वास्तव में इने-गिने हैं, लेकिन पड़ोस के टापू पर एक नई बस्ती बस रही है, जिसे लिडो कहते हैं। यहाँ मीलों तक समुद्र के किनारे नहाने का प्रबंध है, और हज़ारों आदमी दिन-भर नहाते और घमाते रहते हैं। कुछ दिनों में वेनिम का स्थान लिडो ले लेगा।

वेनिस से फ्लारेंस तक का सफर विशेष आकर्षक नहीं था। एक बार फिर पहाड़ी प्रदेश मे प्रवेश करना पड़ा, फिर दसों सुरंगे पड़ीं, किंतु ये बहुत बड़ी नहीं थी। फ़्लारेंस इटली के प्राचीन नगरों में से एक है। यहाँ के चित्रों और मूर्तियो के संग्रहालय इटली मे सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। इटली के चाणक्य मैकावेली, प्रसिद्ध कवि दाँते और सुविख्यात चित्रकार तथा शिल्पकार मैकेल एगलो फ्लारेंस के ही रहनेवाले थे और इनके मकान आदि उसी तरह दिखलाए जाते हैं जैसे अयोध्या मे रामचद्र जी का जन्म-स्थान, सीता-रसोई आदि। फ्लारेंस आर्नो नदी के किनारे बसा है। यह पीलीभीत के निकट की दिउहा नदी के बराबर होगी और उसी की तरह आजकल सूखी पड़ी है। नगर में कोई नवीनता या विशेषता नही है—मझोला पुराना शहर है।
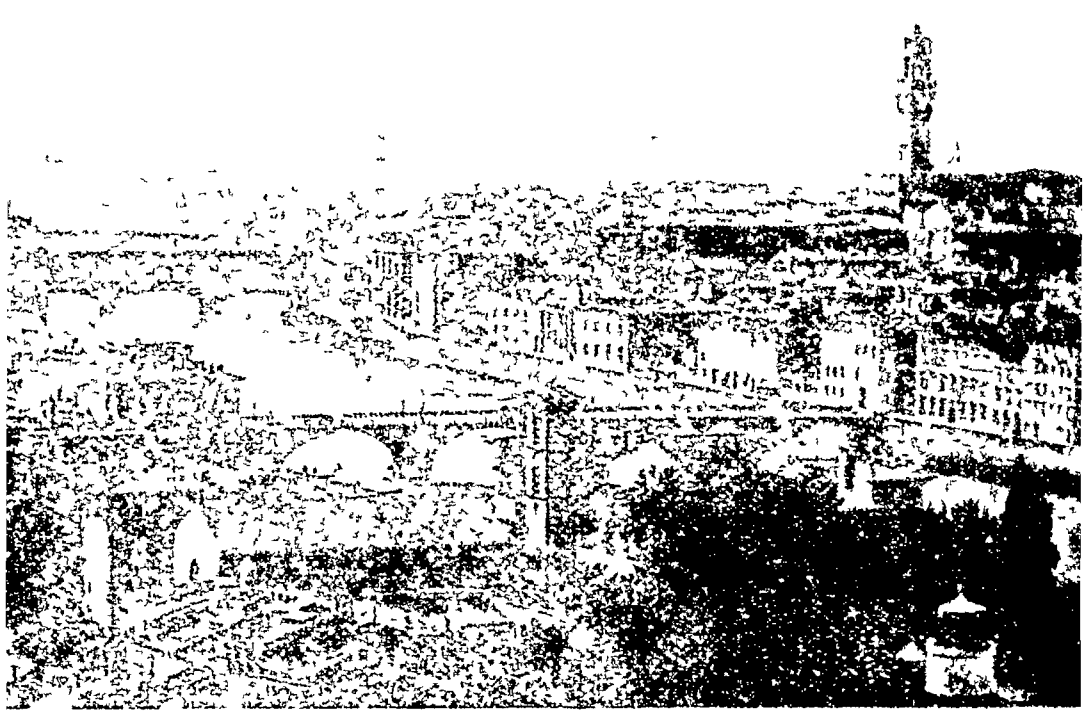
७३. फ्लारेंस नगर का एक दृश्य

७४. फ्लारेंस का प्रसिद्ध अजायबघर
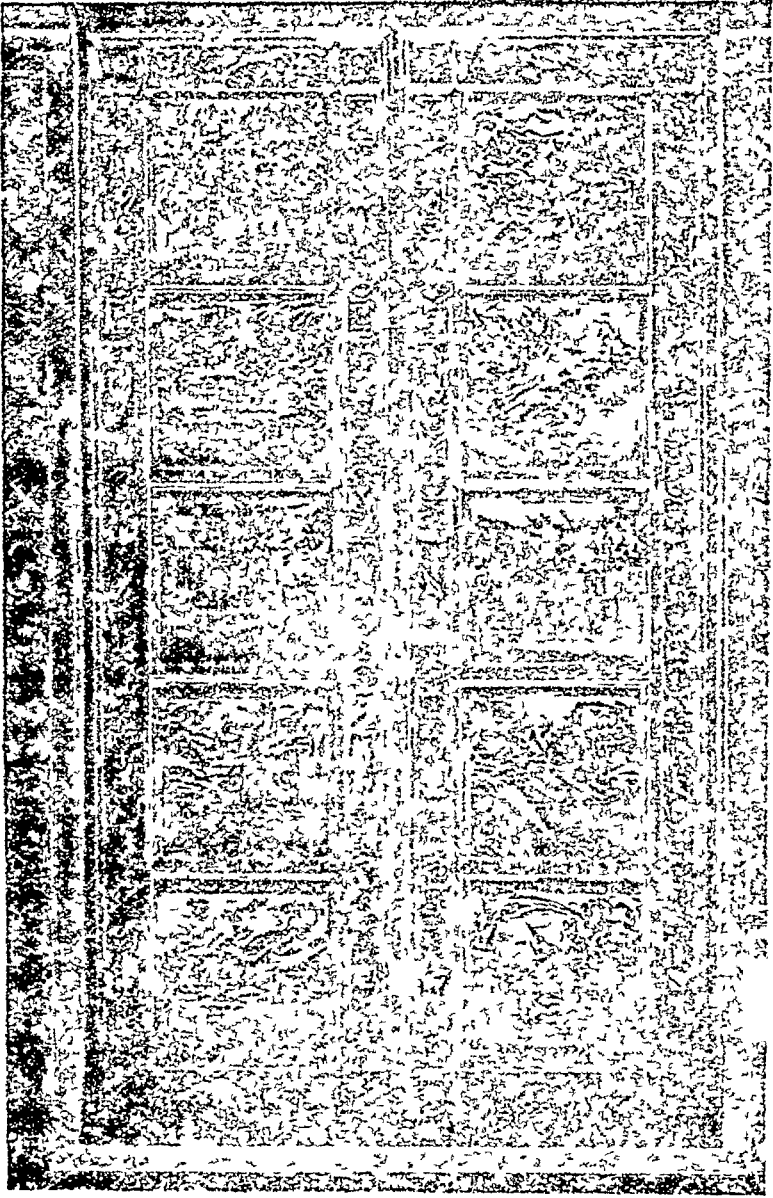
७५. फ्लारेंस के एक गिरजाघर के प्रसिद्ध किवाड़

इटली के लोगो की हालत बहुत कुछ अपने मध्यदेश (हिंदी प्रदेश) के लोगो से मिलती-जुलती है—पुरानी सस्कृतिवाले लेकिन बिगड़ी अवस्था मे, स्त्री-पुरुष सुसस्कृत हैं, किन्तु कमज़ोर-से, बच्चे बहुत हैं और देखने मे नाजुक। बच्चो का लाड़-प्यार भी बिलकुल अपने देश की ही तरह होता है। यहाँ मैने लदन आदि की तरह जज़ीरो से गाड़ी मे बँधे बच्चे नही देखे। लोगो मे अपनी पुरानी सस्कृति का गर्व है। अपने यहाँ की तरह वह बिलकुल नष्ट नही हो गई है। लेकिन अब इटली के दुर्दिन हैं—बड़े-बड़े आलीशान मकान पड़े हैं, किन्तु उनकी मरम्मत करने को भी लोगो के पास पैसा नही है। जर्मनी आदि की नक़ल मे छोटे बच्चे सिपाहियो की पोशाक मे लोगो को प्रोत्साहित करने को निकाले जाते हैं किन्तु ये अपने यहाँ की राम-लीलावाली हनूमान् की फौज की तरह हँसते-कूदते खिलखिलाते जाते हैं, जैसे कोई तमाशा हो। लोग भी तमाशे की ही तरह इन्हे देखते हैं। मिलानो, वेनिस और फ्लारेंस मे मुझे १२०० ईसवी के बादवाली इटली की सस्कृति के नमूने देखने को मिले। गुप्तकालीन रोमन साम्राज्य के भग्नावशेष शायद रोम मे देखने को मिलें।

मैं कल पेरूज़िया जा रहा हूँ। यहाँ से तीन घटे का रास्ता है। ज़रा आराम करने को सोचता हूँ। इधर बहुत सफर किया। मि० दस्तूर और श्रीगोविंद परसो-नरसो तक वहाँ पहुँच जायँगे। यहाँ गरमी काफी है। बिना कुछ ओढे सोना पड़ता है। दिन मे ठडे कपड़े पहनने पर भी चलने से पसीना निकलता है।

१४—इटली से दूसरा पत्र

फ़्लारेंस से मै एक पत्र भेज चुका हूँ। मै १३ अगस्त को पेरूज़िया पहुँच गया था। दूसरे दिन डॉ० दस्तूर भी आ गए थे और अगले दिन श्रीगोविंद लंदन से पेरिस होते हुए पहुँच गए थे। प्रोफ़ेसर लोग पैसे के लोभ मे फिर से विद्यार्थी हुए हैं।

पेरूज़िया बहुत कुछ अलमोड़े से मिलती-जुलती पहाड़ी जगह है। एक पहाड़ी की चोटी पर बसी है, इस कारण चारों तरफ़ की खुली घाटियो का दृश्य मसूरी या चित्तौड़ की तरह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। बस्ती पुरानी है और योरप के शहरों के हिसाब से छोटी। मनोरंजन या घूमने-फिरने की विशेष सुविधा नही। हाँ, गरमी ज़रूर नही है। ज़्यादा दिन ठहरने के लिये मुझे जगह पसद नहीं आई।

डॉ० दस्तूर और उनकी स्त्री ने एक घर ले लिया था, तथा श्रीगोविंद होस्टल में कमरा मिल जाने की उम्मीद में थे। अभी वह सिंयोरा तिबेरी (Signora Tiberi) के घर मे ही ठहरे थे और मै एक दूसरे मकान में था, क्योकि श्रीगोविंदवाले मकान में ज़्यादा जगह न थी। यह नाम श्रीगोविंद ने अपना नही बदला है बल्कि उनकी भटियारिन (Land-lady) का है। घरों की सूची मे देखते हुए नाम मिलता-जुलता दिखाई पड़ने की वजह से आपने इस घर मे ठहरने को सोचा था। सिंयोरा इटैलियन में श्रीमती को कहते हैं। पेरूज़िया की असली बस्ती अलमोड़े की तरह ही बहुत गंदी है। फिर हर जगह चढ़ाई-उतराई। रेल पहाड़ी के नीचे से निकलती है, और वहाँ से पेरूज़िया तक ट्रैम चलती है। छोटी जगह होने के कारण से यहाँ फ़्रांसीसी से भी काम नहीं चलता था। गूँगे आदमियों की तरह काम निकालना पड़ता था। पहाड़ी जगहो की तरह पानी वहाँ जब-तब बरस जाता है। कम-से-कम जब तक मै
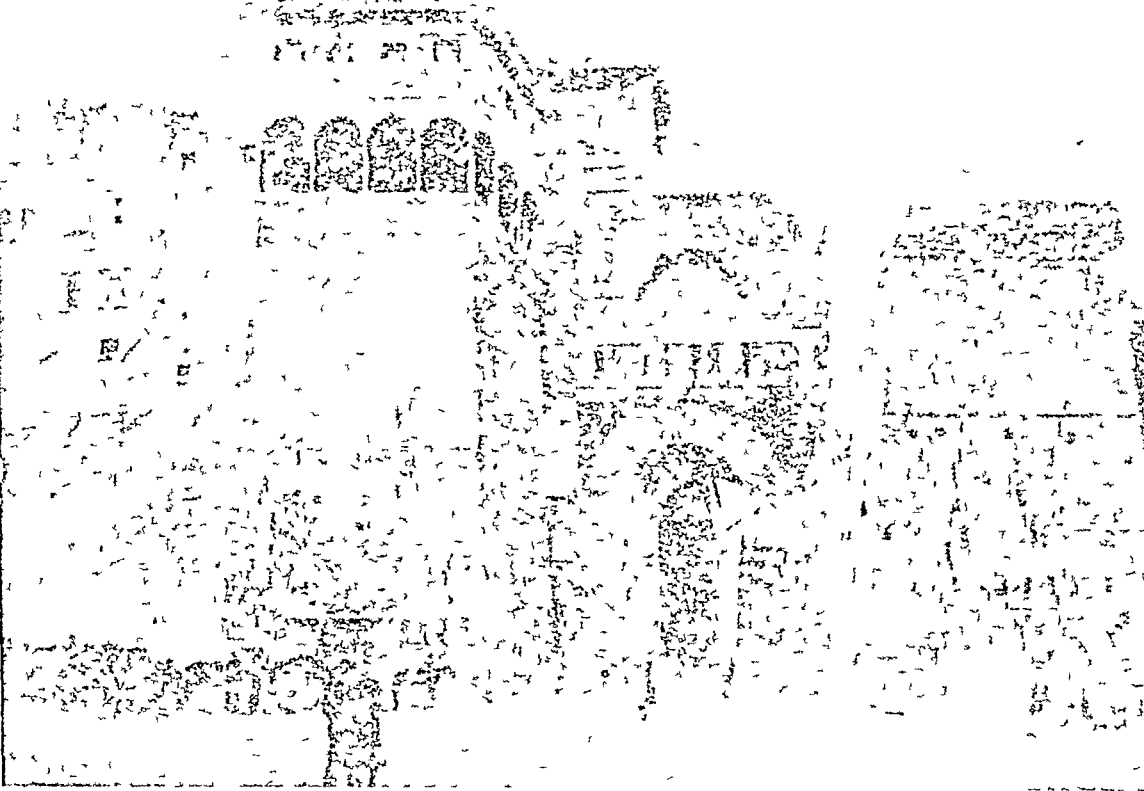
७६ पेरूज़िया की बस्ती का एक फाटक

७७. टाइबर नदी तथा प्राचीन गढ—रोम
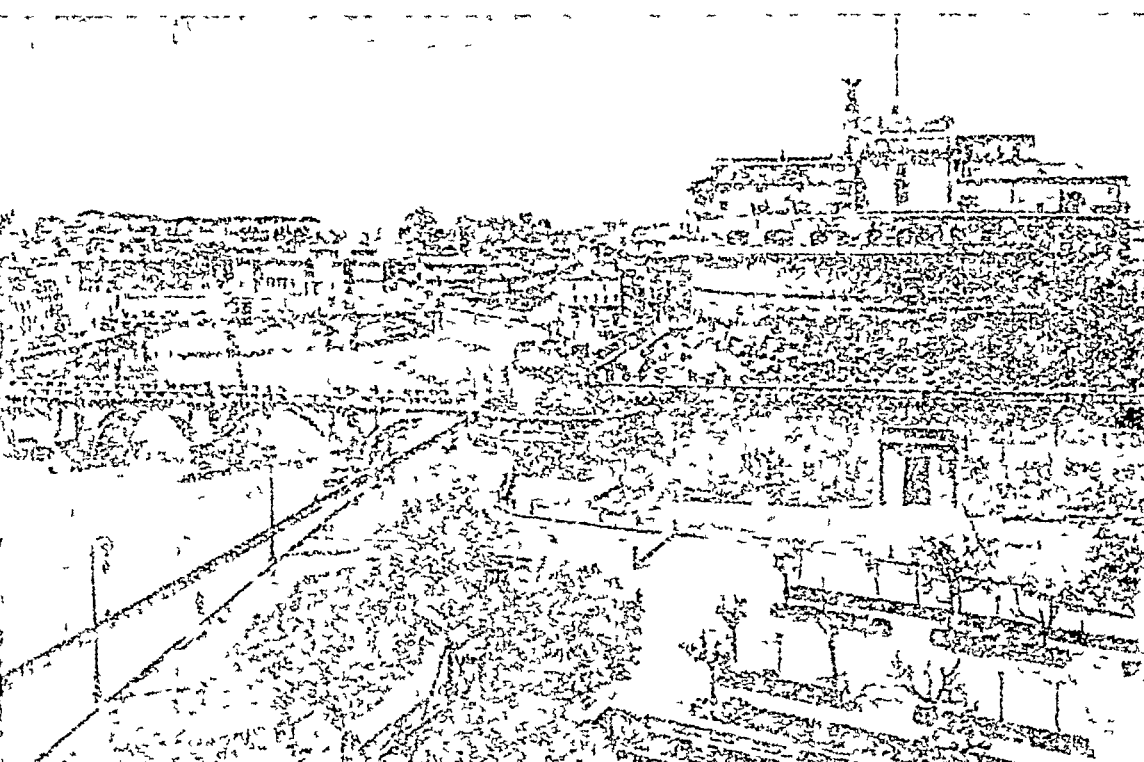
था, तब तक तो ऐसा ही होता रहा। पुराने शहर के बाहर दूर तक नई बॅग-लियाँ बन रही हैं, वे अच्छी थी।

रविवार १८ अगस्त को १०½ बजे पेरूज़िया से चलकर शाम को ४½ बजे मै रोम पहुँच गया था। बीच मे एक जगह रेल बदलनी पड़ी थी, इसके सिवा यह पैसेंजर गाड़ी थी इसलिये इतना वक्त लगा। रास्ता कुछ विशेष आकर्षक नहीं था—वही पहाड़ी प्रदेश, किसानों के घर। इस हिस्से मे हलों मे बराबर बैल जुते दिखाई पड़े। घोड़े उत्तर-योरप की ही चीज़ हैं।

रोम काफी बड़ा शहर है, लेकिन चहल-पहल में पेरिस, बर्लिन या लदन से फीका है। रोम एक तरह से तीन-चार हैं। १९वी-२०वी शताब्दी का रोम योरप के अन्य बड़े शहरो या कलकत्ता-बबई की तरह समझिये। १७वी-१८वी शताब्दी का रोम, वेनिस फ़्लारेंस या पुराने लखनऊ या दिल्ली की तरह पतली गदी गलियोंवाला है, जिसमे ग़रीब रहते हैं। तीसरा रोम उन खॅडहरोंवाला है, जो प्राचीन रोमन-साम्राज्यो के स्मारक-स्वरूप हैं।

रोम मे लगभग मौर्य-काल के समय पचायती राज्य (Republic) था, और कनिष्क-काल के समय साम्राज्य स्थापित हुआ, जिसका आधिपत्य मेडि-ट्रेनियन समुद्र के किनारे के सब देशो—फ्रास, स्पेन, उत्तर-अफ्रीका, मिस्र, टर्की, ग्रीस आदि—तक फैल गया था। ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी में इस साम्राज्य का स्वर्णयुग था। गुप्त-काल मे पहुँचकर यह साम्राज्य नष्ट हो गया। कुछ पंचायती काल के और विशेषतया साम्राज्य-काल के बहुत-से खॅडहर रोम शहर के उत्तर भाग मे हैं—चहारदीवारी के अश, कुछ दरवाज़ों के हिस्से, और कुछ इमारतों के भाग। यह तीसरा रोम केवल रोम-नगर की ही नही, बल्कि योरप की सबसे बड़ी बपौती है। ये प्राचीन इमारते छोटी ईंट या पत्थर की हैं। इस रोम को अपने यहाँ का पाटलिपुत्र समझिये।

रोम की सबसे बड़ी विशेषता विशालता है। यह प्राचीन खॅडहरो मे भी पाई जाती है, और उसकी छाप आधुनिक इमारतों मे भी मिलती हैं—चौड़ी

दीवारे, ऊँचे मकान, लंबे खभे, बड़े बराडे। कला का शौक़ यहाँ की दूसरी विशेषता है। यह भी अब तक चल रही है। लेकिन यहाँ की कला मर्दानी तथा प्रकृति की ओर झुकती हुई है—फ़्रांस की तरह स्त्रैण और भावुक नहीं। मज़दूरी तथा खेती से सबध रखनेवाले इटली के वज़ीर की इमारत के दरवाज़े पर इन पेशों से संबध रखनेवाले सुदर-सुंदर चित्र किवाड़ो पर ताँबे मे ढले लगे हैं। इस छोटी-सी बात से ही इन लोगो की मानसिक प्रवृत्ति का अदाज़ किया जा सकता है।

पचायती तथा साम्राज्यकालीन रोम ईसाई नहीं था। साम्राज्य के अतिम दिनो मे यहाँ ईसाई-धर्म विशेष फैला, और तब से अब तक रोम किसी साम्राज्य का केद्र न होकर रोमन-कैथलिक धर्म का सबसे बड़ा केद्र रहा है। रोम का यह दयालबाग़ (Vatican) शहर के दक्षिण मे है। यहाँ सेट पीटर का प्रसिद्ध गिरजाघर है, पोप रहते हैं, धार्मिक अजायबघर है, बस्ती है, अलग रेल का स्टेशन है। सेट पीटर का गिरजा वास्तव मे विशाल और सुदर है। बाहर से तो बहुत आकर्षक नहीं, किंतु अंदर से भव्य और सुसज्जित है। छत और दीवारे कारीगरी से पूर्ण हैं। दीवारो पर बड़े-बड़े प्रसिद्ध धार्मिक चित्र है, जिनकी लोग पूजा करते है। बहुत ही सुंदर-सुंदर पत्थर और ताँबे की मूर्तियाँ भी बहुत-सी हैं। रोमन-कैथलिक धर्म के प्रधान गिरजाघर को जैसा होना चाहिए, वास्तव मे यह वैसा ही है। पोप का स्थान पूरा एक क़िला है—चारो तरफ ऊँची चहारदीवारी है, और अदर की जगह दिल्ली या आगरे के क़िले से भी बड़ी है, जिसके एक भाग मे रोमन-कैथलिक धर्म से सबध रखनेवाली पुस्तको, चित्रो, मूर्तियो तथा अन्य ऐतिहासिक वस्तुओ का सग्रह है, और दूसरे भाग मे प्राचीन रोम, ग्रीस तथा कुछ अन्य प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास से सबध रखनेवाली सामग्री का संग्रह है। यह अजायबघर भी वास्तव में बहुत ही बड़ा है। इसके बराडे सचमुच एक फ़र्लांग से कम लंबे न होंगे, और ऐसे बरांडों की तीन मंज़िले है। फिर कुछ कमरे अलग हैं। रोम की हर-
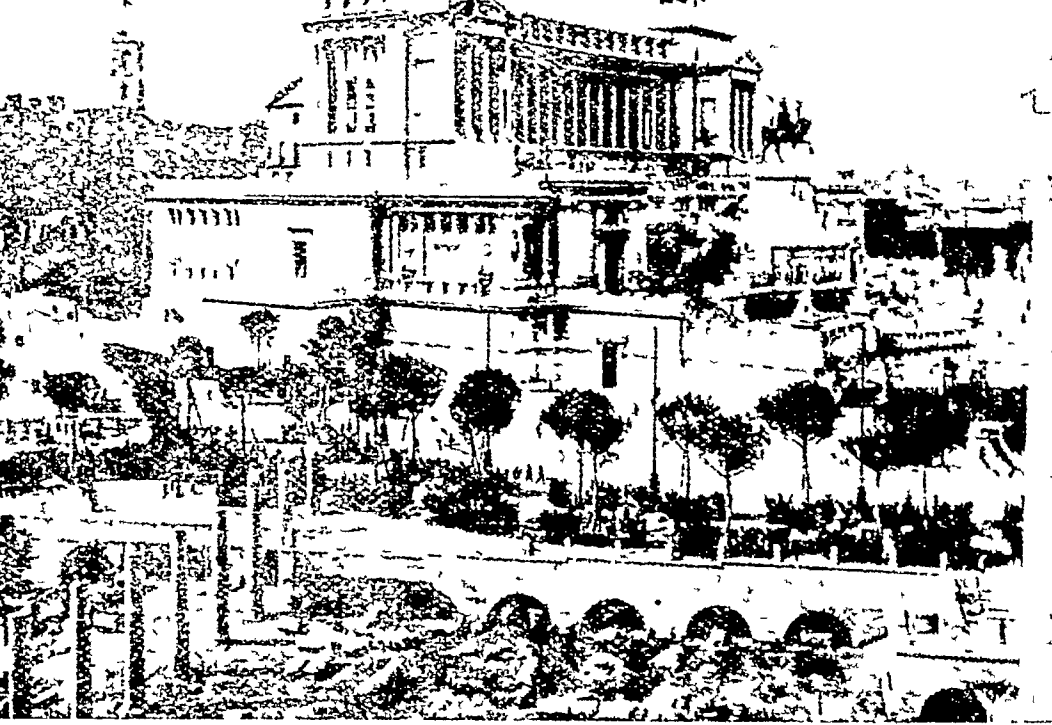
७८. खँडहरों के बीच एक नवीन स्मारक—रोम

७९. साम्राज्यकालीन भग्नावशेष—रोम
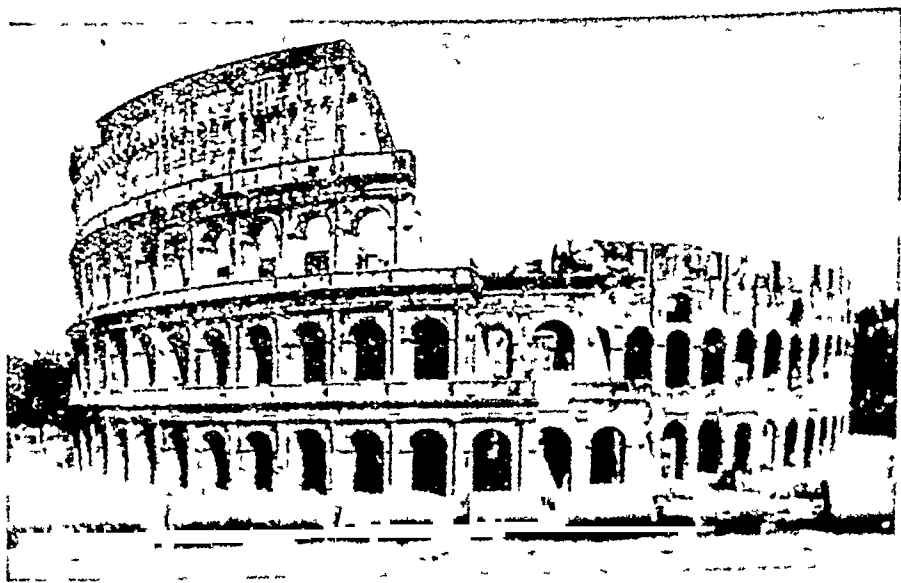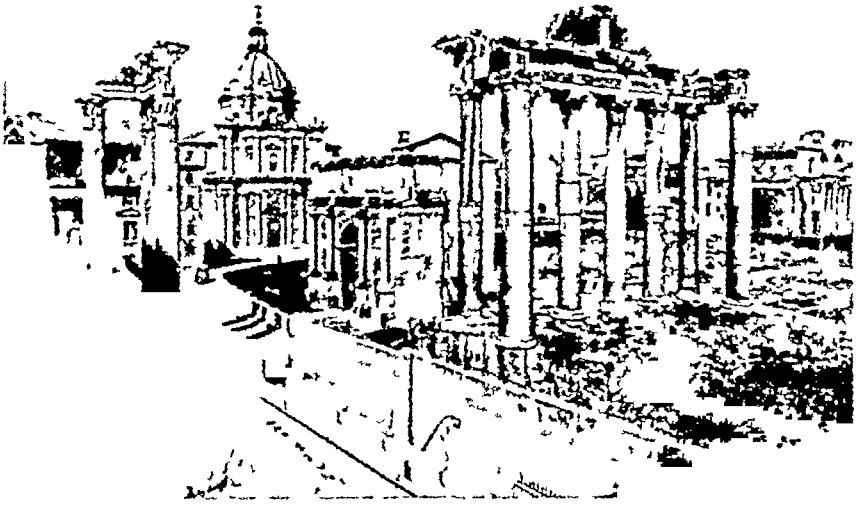
८०. साम्राज्यकालीन भग्नावशेष—रोम

८१. सेंटपीटर का गिरजाघर

एक चीज़ विशाल है।

रोम के इस भाग में पोप का पूर्ण आधिपत्य है। धार्मिक प्रभाव के कारण यों तो समस्त इटली में, लेकिन विशेषतया रोम में, बीसों गिरजाघर हैं, गली-गली में चोग़ा पहने ईसाई भिक्षुणी और भिक्षु दिखलाई पड़ते हैं, जगह-जगह ईसा मसीह या उनकी माता की मूर्तियाँ या तसवीरें बनी हैं, जिन पर फूल चढ़े रहते हैं, और किन्हीं-किन्हीं पर तो आधुनिक भक्तों ने दिन-रात जलते रहनेवाले बिजली के बल्ब लगवा दिये हैं। यह रोम योरप की काशी है।

इटली में बाहर के यात्री बहुत आते हैं, इसलिये झूठ बोलनेवाले सौदागरों की भी कमी नहीं। मैंने आज सुबह रास्ते में रोम पर एक किताब ख़रीदी, जो १५ लिरा (४ लिरा = १) की कहकर बेचनेवाले ने ८ लिरा में दी। मैं समझता हूँ—इसमें मैं बहुत ठग गया, क्योंकि एक तसवीरों का पैकेट लिया, तो उसकी कीमत १० लिरा से शुरू होकर २ लिरा ही रह गई। इस बात में लोग दिल्ली या लखनऊ को बेकार ही बदनाम करते हैं। इटली की इस राजधानी में भी आदमी बदस्तूर नफ़ासत-पसंद, शौक़ीन और आरामतलब हैं। इस शहर की एक विशेष संस्था जूते साफ़ करनेवाले चमारों की दुकानें हैं। जहाँ-तहाँ सड़क के किनारे दो कुर्सियाँ—एक ऊँची और एक नीची—पड़ी रहती हैं, और एक बक्स रखा रहता है। जूता साफ़ करानेवाले रोम के शौक़ीन नागरिक ऊँची कुर्सी पर बैठ जाते हैं, और इतमीनान से सड़क का तमाशा देखते हैं या अख़बार पढ़ते हैं, और नीची कुर्सी पर बैठकर जूता साफ़ करनेवाला मज़े-मज़े जूते पर स्याही लगाता और फिर उसे ख़ूब चमकाता है। पुलिस वग़ैरह के अफ़सरों की पोशाकें यहाँ निहायत उम्दा हैं, और वे लोग भी उन्हें देख-देखकर संतुष्ट होते हुए चलते मालूम पड़ते हैं। अगर गर्द लग जाय तो किस नफ़ासत से खड़े होकर उँगली से झाड़ते हैं कि देखते ही बनता है। तरह-तरह का खाना खाने का यहाँ लोगों को शौक़ है—सिमइये तो इन लोगों को बहुत ही प्रिय हैं। शायद दोनों वक़्त खाते हैं और तरह-तरह की शक्लों की

बनाते हैं। फल धोकर और छीलकर खाते हैं। खाने की मेज़ पर काली मिर्च भी रहती है। गरमी की वजह से सड़े फल और सूखी तरकारियाँ बाज़ार में अक्सर दिखलाई पड़ती हैं।

जैसे बहुत खाद चाहनेवाली चीज़ की खेती के बाद ज़मीन बहुत दिनों के लिये कम उपजाऊ हो जाती है, मुझे तो ऐसा लगता है कि ठीक ऐसे ही साम्राज्य स्थापित करने और क़ायम रखने के असाधारण और अस्वाभाविक परिश्रम के बाद राष्ट्र की मीग-सी निकल जाती है और वह फिर बहुत दिन तक नही पनप पाता। इटली और अपने भारतवर्ष मे हिंदी प्रदेश इस बात में एक ही श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। दोनों देशों में प्राचीन वैभव के क़िस्सेमात्र रह गए हैं, उन्ही पर लोग जान देते हैं। चेहरो पर अच्छे दिनों की झलक ज़रूर दिखलाई देती है, और दिलो में अब भी दरियादिली समाई हुई है, यों फाक़ेमस्त हैं। तो भी हम लोगों की सस्कृति की पराकाष्ठा को इटैलियन नहीं पहुँच सकते। हम लोगो की हाँडी भी तो बहुत बड़ी थी, फिर खुरचन भी बहुत होनी ही चाहिए।

रोम

८२. समुद्रस्नान से लौटती हुई रमणियाँ—नीस

८३ समुद्र के किनारे धूप खाने का दृश्य—नीस

१५—दक्षिण फ़्रांस से पत्र

रोम से मैने पिछला पत्र लिखा था। मगल २० अगस्त (१६३५) को १२ बजे रोम से चलकर ५½ बजे शाम को पिसा रुक गया था। पिसा साधारण शहर है। वहाँ की प्रसिद्ध झुकी हुई मीनार देखने गया था। तसवीरो से वह जितनी ऊँची मालूम होती है, उतनी ऊँची है नही। बुधवार २१ को सुबह ६ बजे पिसा से चलकर शाम को ५ बजे यहाँ नीस पहुँचा।

यह सफर वास्तव मे इतना लबा नही था, जितना वक़्त लगा। इटली-फ्रास की सरहद पर रेल बदलने मे क़रीब दो घटे ख़राब हुए। इसके सिवा पिसा से नीस तक बराबर दो-दो, तीन-तीन मील पर स्टेशन हैं, इसलिये यहाँ वक़्त बहुत लगता है। रोम से पिसा तक तो सफर विशेष मनोरजक नही था। कभी-कभी रेल समुद्र के निकट आ जाती थी, लेकिन ज़्यादातर काफी हटकर चलती थी। पिसा से नीस तक रेल की पटरी बिलकुल समुद्र के किनारे-किनारे है। समुद्र का किनारा पहाड़ी और टेढा-मेढ़ा है। रेल की पटरी सीधी डाली गई है, इसलिये अनगिनती सुरगे बनानी पड़ी हैं। यह डेढ-दो सौ मील का क़रीब-क़रीब आधा सफर खुले मे और आधा सुरंगों मे होता है। हर वक़्त आँखमिचौनी-सी होती रहती है—कभी अँधेरी सुरग और कभी समुद्र के किनारे का सुंदर दृश्य। रेल की पटरी समुद्र के निकट ऐसी मालूम होती है, मानो प्रयाग मे क़िले से बलुआ घाट तक की जमुना के किनारे की सड़क पर रेल चल रही हो। इस हिस्से मे सब जगह किनारे तक ख़ूब हरे पहाड़ हैं, और समुद्र का तट चट्टानी न होकर रेतीला और खुला है। इसीलिये समस्त योरप और अमेरिका से अमीर लोग यहाँ समुद्र में नहाने और धूप मे घमाने आते हैं। पिसा से नीस तक समुद्र के किनारे-किनारे बराबर बस्ती चली गई है—कही बड़ी और सुंदर और कही सादा। यही योरप का प्रसिद्ध रिवेरिया का समुद्र-तट है और मात कार्लो आदि

फैशनेबिल जगहें यहाँ ही हैं।

यहाँ नीस में जहाँ मैं ठहरा हूँ यह जगह एक पहाड़ी पर खुले मे है। दूर नीचे नीस की बस्ती और समुद्र दिखलाई पड़ता है, जो लगभग दो मील की दूरी पर होगा। यह प्रकृतिवादियो का एक आश्रम है—चार-पाँच बॅगले हैं, खेत और बाग़ हैं। सभ्यता-पूर्ण शहरो की ज़िदगी से ऊबकर कुछ वहमी फ्रासीसी प्रकृतिवादी यहाँ आकर छुट्टी बिताते हैं। प्रायः लोग परिवार-सहित यहाँ के बॅगलो या कॉटेजो मे रहते हैं। खाने का अपना प्रबंध न करनेवालों के लिये एक महिला अपने यहाँ प्रबध कर देती हैं। मैं इन्हीं के यहाँ खाना खाता हूँ। अन्य छः-सात लोग साथ खानेवाले हैं। खाने के साथ फ्रासीसी का अभ्यास भी होता है। जगह शात और स्वच्छ है। महीने-भर रेल, ट्रैम और मोटर की धड़धड़ तथा दौड़-धूप के बाद यहाँ बहुत आराम मालूम हो रहा है। आश्रम मे विशेष कपड़े पहनने का भी कोई बधन नही। मै धोती क़मीज़ पहनकर घूम-फिर सकता हूँ। यह भी एक आराम है। आश्रम में केवल शाकाहार होता है, जिसमें यहाँ साधारणतया अडे तो शामिल रहते ही हैं। आश्रम के सचालक और उनकी स्त्री भले स्वभाव की मालूम होती हैं। यहाँ रहनेवाले साधारणतया अपना काम अपने हाथ से ही करते हैं। मौसम इलाहाबाद के अक्तूबर-नवबर का-सा है।

यहाँ भी आजकल इटली-अबीसीनिया की चर्चा बराबर रहती है। परिस्थिति बड़ी विचित्र है। हरएक योरपीयन राष्ट्र केवल स्वार्थ के अनुसार अपनी नीति बनाता है। अँगरेज और फ्रासीसी राजनीतिज्ञ इटली का अबीसीनिया पर क़ब्ज़ा बिलकुल पसद नहीं करते, विशेपतया अँगरेज़, क्योंकि उन्हें मिस्र के सिवा भारत के मार्ग में भविष्य मे बाधा पड़ सकने का सबसे बड़ा भय है। यों भी कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र की शक्ति का बढना नही देख सकता। जर्मनी जरूर चुप है, और अपना कुछ हर्ज नहीं समझता; बल्कि अगर एक बार इटली अबीसीनिया पर क़ब्जा कर ले, तो वह अपने उपनिवेशों को वापस पाने की
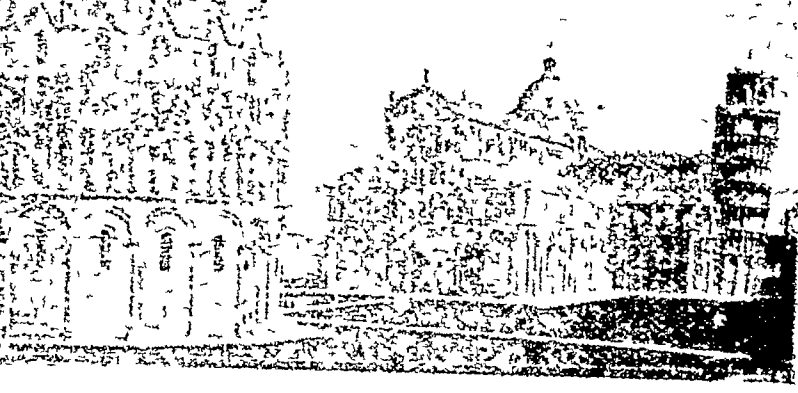
८४. प्रसिद्ध गिरजाघर व टेढी लाट—पिसा

८५. प्रकृतिवादियों का आश्रम—नीस

८६. समुद्रस्नान—नीस

८७ समुद्र की लहरों का एक दृश्य—नीस
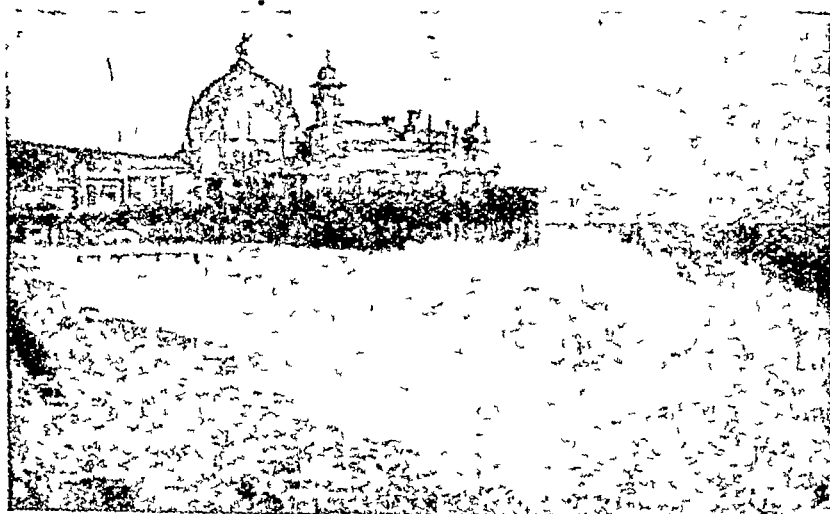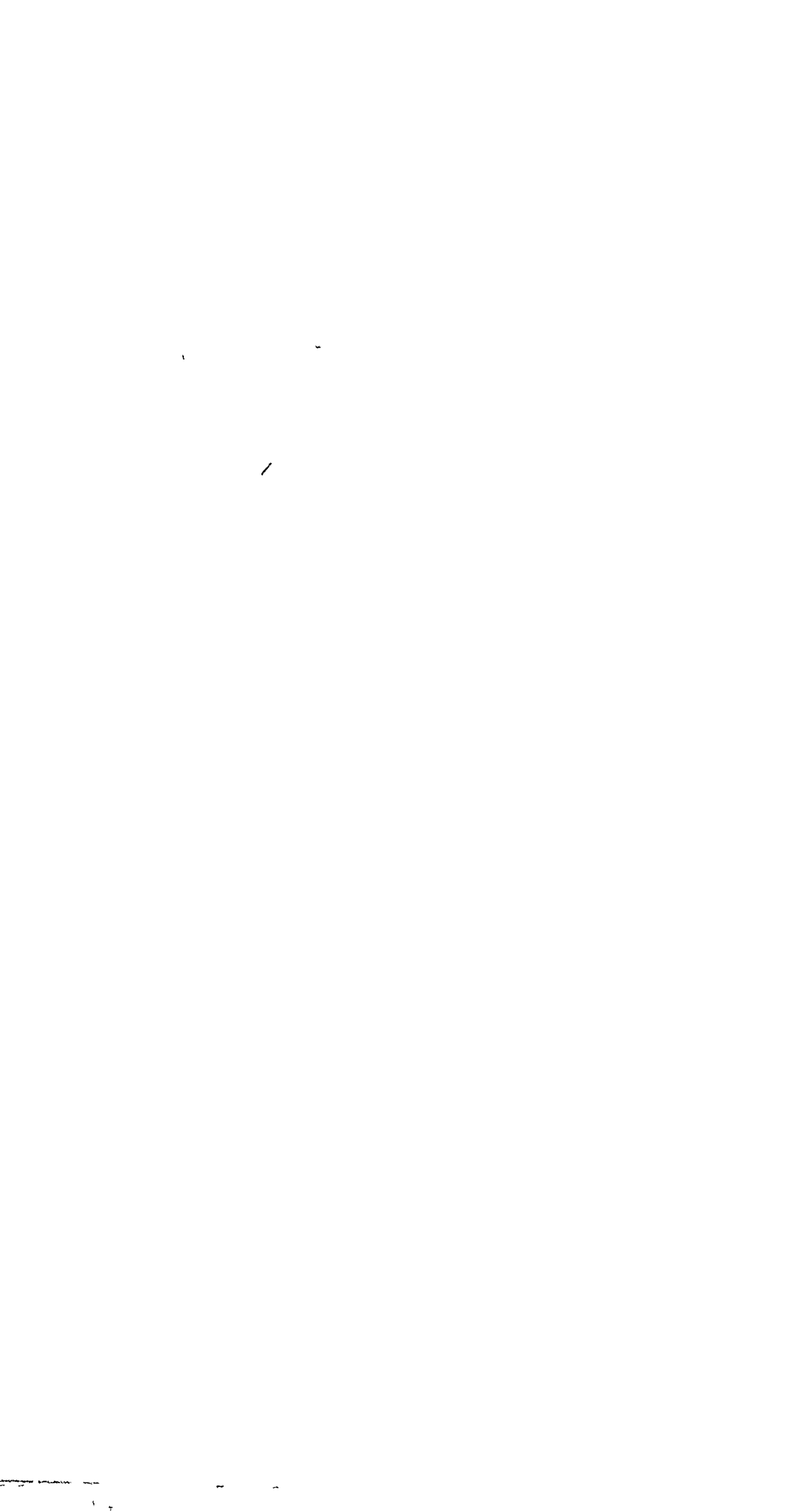
माँग ज़ोरों से उठा सकता है। सबसे अधिक नापसद लोग इटली की इस खुली डकैती के ढग को करते हैं। इससे ससार की नजर मे योरप के समस्त देशों की नैतिक धाक को अतिम भारी धक्का लगेगा, यह सब लोग अनुभव करते हैं। अँगरेज विशेष रूप से इस ढग पर नाराज हैं।

लेकिन यह सब होते हुए भी कोई भी योरपीय देश इस समय योरपीय युद्ध नहीं चाहता, और इसका मुख्य कारण यह है कि जनता अभी पिछले युद्ध की मुसीबतों को भुला नही पाई है, न आर्थिक परिस्थिति ही ठीक हो पाई है। यदि राजनीतिज्ञो का वश चले तब तो वे इसी पल लड़ने को तैयार हैं। लेकिन वे जानते हैं कि अगर वे ऐसा करेंगे तो प्रायः प्रत्येक देश मे राजविप्लव हो जाने की पूर्ण सभावना है। ऐसी परिस्थिति मे शीघ्र योरपीय युद्ध छिड़ जाने की सभावना नही मालूम होती।

मुसोलिनी और उनके सैनिक इस समय कैसर की तरह अपनी सफलता निश्चित समझ रहे हैं। अबीसीनिया पर क़ब्जा करना आसान भी है, और कठिन भी। अगर कहीं रूस-जापान के युद्ध की तरह अनहोनी बात हुई और अबीसीनिया न हारा तो जैसे उस युद्ध ने एशिया के देशों को आत्मनिर्भरता का सदेश दिया था, उसी तरह अफ्रीका की जातियों के बहुत दिनो बाद दिन फिरेंगे। इटली-अबीसीनिया का युद्ध निश्चित-सा मालूम होता है, अगर डरकर अबीसीनिया ने पहले ही आत्मसमर्पण न कर दिया, या अन्य योरपीय देशो ने उसे धोके मे डालकर किसी तरह का झूठा समझौता न करवा दिया। अगर युद्ध हुआ भी तो अन्य योरपीय देश उसकी बिलकुल हार नहीं चाहते, क्योंकि ऐसा होने से उस पर इटली का पूरा सैनिक क़ब्ज़ा हो जायगा। इसलिये वे उसे अच्छी तरह लड़ावेंगे। इसमे तिजारती फायदा भी है किंतु साथ ही दूसरी ओर यह यत्न भी करेंगे कि आग घर मे न आ जाय—अफ्रीका के उस किनारे तक ही सीमित रहे। इस महीने मे भविष्य की परिस्थिति अधिक स्पष्ट हो जायगी। १५-२० सितबर के लगभग अबीसीनिया मे बरसात समाप्त हो जाती

है, तब तक जेनेवा के राजनीतिज्ञो के दाँव-पेच भी समाप्त हो जायँगे। उस समय जो होना होगा, सो होगा।

एक बात मै लिखना भूल गया था। जब मै इटली मे था, तो किताबों की दुकानो पर पूर्वी अफ़्रीका के नए नक़्शे अक्सर टँगे दिखलाई पड़ते थे। उनमें इटली के उपनिवेशो में अबीसीनिया की तरफ़ की सरहद ही हटा दी गई थी।

यहाँ ख़ाली समय मे आश्रम की लाइब्रेरी से लेकर मैने कई किताबे पढ़ी—बाइबिल के अतिरिक्त फ्रास का एक इतिहास, भाई परमानद की जीवनी और कुछ बच्चो की शिक्षा-सबधी पुस्तके तथा आधुनिक जापान का एक वर्णन। बाइबिल के अध्ययन से मैंने विशेष और स्थायी लाभ उठाया है।

महात्माजी के 'इडियन होम रूल' को यहाँ योरप के वातावरण मे पढ़कर मैने और भी अधिक रोचक पाया।

नीस

८८. योरप के एक गांव की बस्ती

८९. अंगूर की फसल—दक्षिण फ्रांस

१६—योरप से अन्तिम पत्र

लगभग तीन सप्ताह नीस मे आराम करने के बाद कल सुबह ७½ बजे वहाँ से चलकर-रात ११ बजे मै अच्छी तरह पेरिस आ गया। सफर काफी लंबा है। रेल सीधी आई, और डाक थी, तब इतना वक्त लगा। इलाहाबाद से सहारनपुर तक का सफर-समझिए। रास्ते मे प्रसिद्ध बंदरगाह मारसेइ (Marseille) और फ्रास का दूसरा सब से बड़ा शहर लियों (Lyon) पड़े थे। नीस के आगे समुद्र का किनारा २०-२५ मील तक अच्छा है, उसके बाद तो लाल चट्टानी ज़मीन और पहाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं। दक्षिणी हिस्सा कुल चट्टानी और सूखा था, मध्य फ्रास ज़रूर काफी हरा लेकिन वही छोटी-छोटी पहाड़ियोंवाला था।

नीस मे भी एक-दो दिन से कुछ-कुछ मौसम बदलता-सा मालूम होरहा था लेकिन यहाँ पेरिस मे तो काफी मौसम बदला हुआ मिला। कुछ-कुछ ठंड शुरू हो गई है। दिवाली का-सा मौसम मालूम होता है। एक हफ्ते से बादल रहने लगे हैं, और जब-तब बूँदाबाँदी हो जाती है। कुछ-कुछ पतझड़ भी शुरू हो गया है। वैसे अभी पार्क वग़ैरह ख़ूब हरे और फूलो से भरे हैं। यहाँ अब गरमी का मौसम बिलकुल नही मालूम होता। इकहरे गरम कपड़े हम सबने निकाल लिए हैं। नीस मे तो क़मीज़-धोती पहने दिन भर धूप मे कटता था।

पिछले डेढ महीने योरप के लगभग आधे दर्जन देशों मे घूमने के बाद मै तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वास्तव मे यहाँ कोई नई बात कही कुछ भी नही है। वैसे ही देश हैं—वही पहाड़, नदी, मैदान, खेत; वैसे ही आदमी हैं—अमीर, ग़रीब, आदर्शवादी, धूर्त और वैसी ही लोगों की अंदरूनी ज़िंदगी है। अगर भेद दिखलाई पड़ता है तो बाहरी गौण बातों में जैसे भाषा, पहनावे और रहन-सहन आदि मे। जिस तरह इन्ही छोटे-छोटे भेदों के कारण एक आदमी दूसरे से भिन्न दिखलाई पड़ता है, वैसे ही एक देश भी दूसरे से भिन्न

मालूम पड़ता है। यहाँ के लोगो का चरित्र भी भिन्न नही है। अतर केवल इतना है कि बहुत दिनो की गुलामी के कारण हम लोग अपने ऊपर भरोसा करना खो बैठे हैं।

इस यात्रा मे मुझे दो भिन्न योरप स्पष्ट दिखलाई पड़े—शायद तीन योरप हैं। मेडिट्रेनियन के किनारे के देशो—इटली, फ्रास, स्पेन, ग्रीस आदि—का लैटिन या सनातनी रोमन-कैथलिक योरप एक है। वास्तव मे यह सच्चा आधुनिक योरप नहीं है। यहाँ के लोगो की शकलें, ज़िंदगी, रहन-सहन, खाना-पीना वग़ैरह टर्की, मिस्र आदि से मिलता-जुलता है। यहाँ की प्राचीन सभ्यता ईसाई नही थी, और बाद का ईसाई-धर्म भी तो मेडिट्रेनियन के किनारे के ही एक देश (पैलेस्टाइन) का एक धार्मिक सुधार था। अब लोग अवश्य सब ईसाई हैं और कोट-पतलून पहनते हैं। लेकिन अगर ये ही लोग मुसलमान हो गए होते, तो तुर्कों से भिन्न न दिखलाई पड़ते। इस योरप से भविष्य में कोई आशा नहीं की जा सकती। योरप के ये देश बूढ़े और थके हुए हैं। इनमे सबसे अधिक बूढा इटली है, जिसे मुसोलिनी अपने प्रयत्न से च्यवन ऋषि के समान फिर से युवा करना चाहते हैं। पुरानी सभ्यता के खँडहरो के बीच मे बसे और सनातनी रोमन-कैथलिक धर्म के प्रभाव से जकड़े हुए ये लोग किस तरह अपना दृष्टिकोण बदल सकेंगे, यह मेरी समझ मे अभी नही आ पाता।

आधुनिक सच्चा योरप उत्तर-सागर (North Sea) के किनारे का प्रोटेस्टेंट योरप है, जो दक्षिण-योरप की सभ्यता के समय जगली था और बाद को ईसाई हुआ। इन देशों मे प्रधान जर्मनी और इगलैंड हैं। हालैंड, डेनमार्क स्वेडिन, नार्वे आदि नगण्य छोटे-छोटे देश हैं। यह युवा और स्फूर्ति-पूर्ण योरप है। सनातनी रोमन-कैथलिक धर्म इन असंस्कृत लोगो की प्रकृति के अनुकूल नहीं हो सकता था, इसीलिए इन सरहदी पजाबियो ने गुरुनानक या स्वामी दयानद के चलाए-जैसे सुधारों को अपनाया। १६वीं और २०वीं शताब्दी की आधुनिक योरपीय सभ्यता का वास्तविक केंद्र जर्मनी है। यह आधुनिक काल

९० गाँव का पनघट— दक्षिण फ्रास

९१ यांग के

ो गली
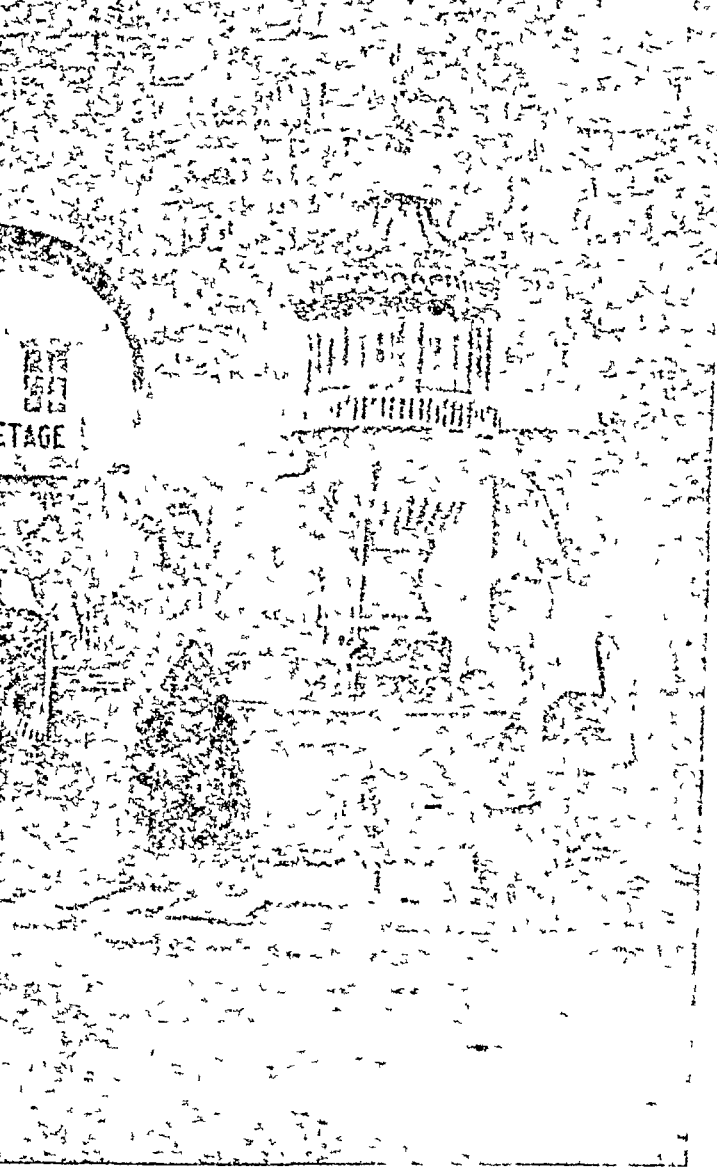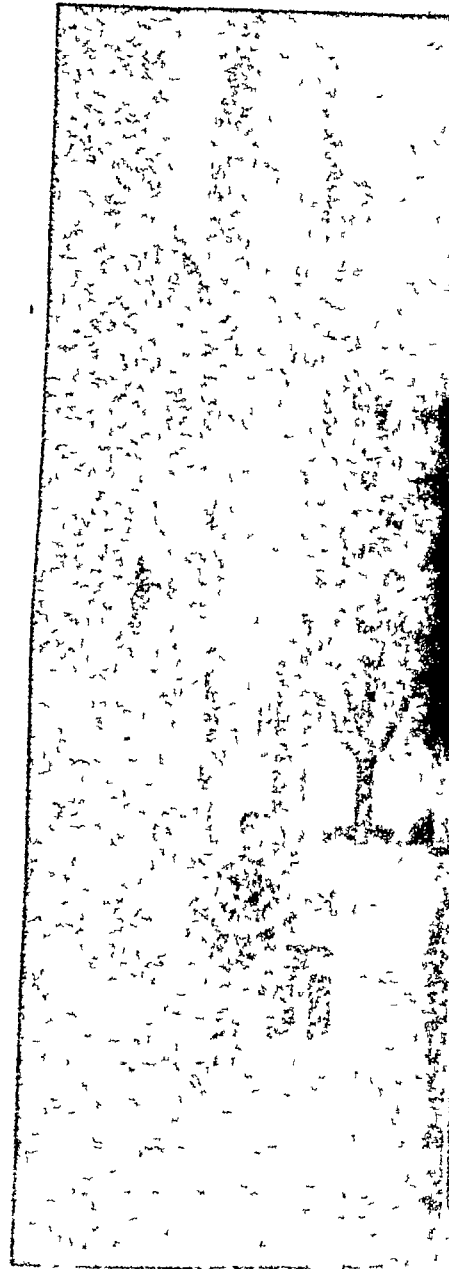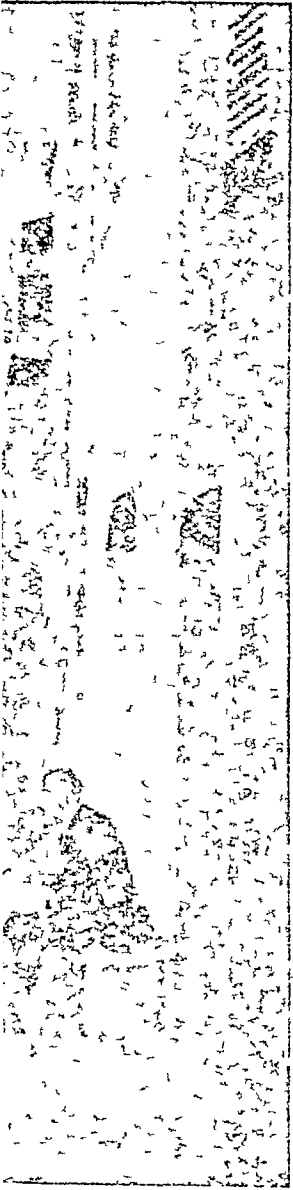
६२. एक गाँववाली अपने खच्चर पर

भी व्यक्ति के समान ही बाल, युवा और वृद्ध होते हैं। इस स्वाभाविक गति को कोई रोक नहीं सकता। नख-दंत-हीन सिंह अगर चुपचाप गुफा मे पड़ा रह सके, तो ठीक है, नही तो दुर्भाग्य से अगर चार गीदड़ भी गुफा की तरफ आ निकले तो उसकी मर्यादा का क़ायम रह सकना असभव है। अपने देश की पिछली दुर्गति का कारण अपनी सभ्यता का वृद्ध हो जाना था। अगर विदेशियों ने इधर मुँह न उठाया होता, तो चीन आदि की तरह हम लोग भी चुपचाप पीनक मे पड़े रह सकते थे। टक्कर आ पड़ने पर नए हाथों के मुक़ाबले बूढ़े हाथ बहुत देर नही टिक सके, लेकिन मृत्यु के बाद अपने यहाँ तो पुनर्जन्म में विश्वास है। राष्ट्र का भी पुनर्जन्म संभव है। मुसोलिनी भी तो अपने देश का ऐसा ही पुनर्जन्म करने का उद्योग कर रहे हैं। प्रश्न केवल यह हो सकता है कि पुनर्जन्म का समय आया भी है या नही? नया बीज तभी उगेगा जब उसकी ऋतु आ जाय, और ठीक भूमि और जल-वायु मिल सके।

पेरिस

१२ सितम्बर १९३५

६३ मछलीवाली

परिशिष्ट

(क) चाचा साहब के नाम एक रोचक पत्र

(मेरे चाचा डा० कुंदनलाल वर्मा आर्यसमाज के पुराने कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने मुझसे एक पत्र में पूछा था कि क्या जर्मनी में वैदिक धर्म के प्रचार की आवश्यकता तथा गुजायश है। उनके प्रश्न का उत्तर मैंने इस पत्र द्वारा दिया था।)

आपने अपने पत्र मे एक बड़ा ही रोचक प्रश्न पूछा है कि क्या जर्मनी में वैदिक धर्म के प्रचार की आवश्यकता व गुजायश है ? मैं अपनी योरप की यात्रा के बाद इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जर्मनी क्या समस्त बड़े योरपीय देशों के लोग अपनी आधुनिक परिस्थिति से ऊबे हुये हैं। कोई देश भी शाति या सुख मे नही है। लेकिन लोगों की यह समझ मे नही आता कि निस्तार का क्या मार्ग है। वर्तमान अमानुषी सभ्यता के जाल मे लोगो के हाथ-पैर ऐसे जकड़ गये हैं कि स्वतन्त्रता पूर्वक सोचने को भी किसी के पास समय नहीं। प्रत्येक देश में राजनीतिक और आर्थिक शक्ति रखनेवाले नेता इसी मार्ग मे गोड़-गोड़ कर लोगों को आगे बढने को प्रेरित कर रहे हैं। असहाय और निरुपाय जनता को कोई और रास्ता नही दिखलाई पड़ता। जनता वास्तव मे युद्ध व सघर्ष नहीं चाहती किन्तु कठिनाई यह है कि आधुनिक सभ्यता की जो लतें पीछे लग गई हैं वे भी नही छोड़ सकती और उनको क़ायम रखने को या बढाने को इस मार्ग मे ही आगे बढने के सिवाय और कोई उपाय नही है।

साथ ही प्रत्येक देश मे कुछ ऐसे दूरदर्शी विद्वान् भी पैदा हो रहे हैं जो इस गोरखधंधे के रहस्य को समझ गये हैं किन्तु उनकी संख्या और शक्ति इस समय नही के बराबर है। चक्र जब तक एक बार पूरा नहीं घूम लेगा तब तक अपनी जगह पर नही लौटेगा। काफी ज़ोर के साथ एक बार घुमाया जा चुका है इसलिये उसको रोकना भी असंभव है। आतरिक विष के द्वारा इस वर्तमान

सभ्यता की मृत्यु हो जाने पर ही दूसरी सभ्यता का जन्म यहाँ हो सकेगा।

इस तरह वैदिक धर्म के प्रचार की आवश्यकता और गुंजायश दोनो ही योरप में हैं किन्तु मेरी समझ मे इनकी सुनवाई का अभी समय नही आया है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी कठिनाइयाँ हैं। वैदिक धर्म से अगर तात्पर्य केवल सध्या, हवन, सस्कार आदि कर्मकाड से लिया जावे तब तो मेरी समझ में इनके फैलाने की न विशेष आवश्यकता ही है और न गुजायश ही है। यहाँ भी कर्मकाड की कमी नही है। हाँ, यदि वैदिक धर्म से तात्पर्य आर्य-जीवन के आदर्शो से है—जैसे प्राकृतिक जीवन वर्णव्यवस्था, पंचयज्ञ आदि—तब वास्तव मे इनसे उत्तम अनुकरणीय आदर्श मुझे दूसरे नही दिखलाई पड़ते। सच तो यह है कि यहाँ की परिस्थिति देखकर मेरा अपने आर्य आदर्शों के प्रति प्रेम और आदर और भी अधिक बढ गया है। लेकिन आदर्श मौखिक प्रचार से नही फैलाये जा सकते; उनके फैलाने का एक मात्र उपाय उन्हे जीवन मे घटित करके दिखलाना है। इस बात मे हम लोग स्वय कितने पिछड़े हैं यह हम-आपसे छिपा नही है। अतः मेरी समझ में जब तक हम-आप मे से बड़ी सख्या में लोगों के नित्यप्रति के जीवन आर्य आदर्शों पर नही ढलेंगे तब तक उनको दूसरो को सिखलाने को घूमते फिरना अदूरदर्शिता होगी।

एक दूसरी कठिनाई अपने यहाँ की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के कारण भी है। यदि स्वतत्र विदेशियो के सामने आप अपने यहाँ के ऊँचे आदर्शों की चर्चा कीजिये तो वे अक्सर पूछ बैठते हैं कि लेकिन ये आपके आदर्श आप लोगो को मुक्त नही कर पा रहे हैं। वास्तव मे इसका कोई भी सतोषजनक उत्तर नही है। सच तो यह है कि हम अपने आदर्शो से पतित हो गये हैं, इसीलिये अन्य विशेष क्षेत्रो मे भी इस दुरवस्था मे हैं। इस तरह हम फिर वहीं ही घूमकर पहुँचते हैं कि बिना अपने आदर्शों पर लौटे निस्तार नही। केवल मात्र राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त करने के अन्य उपाय भी हैं, विशेषतया बहुत से पश्चिमी तात्कालिक फल देनेवाले इलाज हैं, लेकिन अँग्रेज़ी दवाओ का

जो फल होता है वह आपसे छिपा नही है—एक रोग दबता है दस बाद को उठ खड़े होते हैं। मेरी समझ मे आर्य आदर्शों को छोड़कर प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता कुछ अधिक हितकर नही सिद्ध होगी। पश्चिम के देश भी तो स्वतन्त्र हैं किन्तु सच्चा सुख और शाति उनसे कोसो दूर है।

लेकिन मान लीजिये कि वर्तमान योरपीय सभ्यता की शक्ति क्षीण हो जावे और साथ ही हम लोग अपने आदर्शों पर लौटते हुए स्वतन्त्र हो जावे, उस समय भी इन पश्चिमी देशों मे आर्य आदर्शों के फैल सकने मे मुझे एक भारी कठिनाई दिखलाई पड़ती है। इन लोगो को निकट से देखकर मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इन जातियो का मानसिक विकास अभी इतना नही हो पाया है कि ये आर्य आदर्शों को ग्रहण कर सकें। शरीर और बुद्धि के आगे आत्मा तक इनकी पहुँच नही है—मै व्यक्तियो के सबध मे नही कह रहा हूँ राष्ट्रो के सबध मे कह रहा हूँ, और व्यक्तियो मे भी यहाँ कितने आत्मिक साधना की सीढ़ी तक पहुँच सके हैं इसमे मुझे सदेह ही है। आजकल योरप मे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने का एक फैशन चला है लेकिन आधे नगे घूमने लगना या दरख़्तो पर चढ बैठना ये लोग प्राकृतिक जीवन समझते हैं। इन लोगों की पहुँच का अनुमान आप इस बानगी से लगा सकते हैं। इनकी ग्रीक और रोम की प्राचीन सभ्यताये भी भौतिक सौन्दर्य और वैभव के ऊपर नही उठ पाई थी। आधुनिक काल मे भौतिक उन्नति मे बुद्धि की मात्रा विशेष बढ गई है केवल इतना ही अतर हुआ है। एक पूर्वी यहूदी जाति के सुधारक ईसा मसीह के नैतिक उपदेशों को ये योरपीय जातिये कितना ग्रहण कर सकी हैं यह भी किसी से छिपा नही है। बेचारे ईसा मसीह के सुन्दर उपदेशो को सबसे अधिक आडम्बर से पूर्ण रोम मे किया गया और यह आधे योरप का वर्तमान ईसाई धर्म है। इस सनातनी रोमन-कैथलिक धर्म के सुधारक लूथर के प्रोटेस्टेट धर्म के अनुयायी देश भी वास्तव मे उन उपदेशो के सार को समझने मे समर्थ नही हो सके बल्कि भौतिक उन्नति मे वे इस समय सबके पथ प्रदर्शक

हैं—मेरा तात्पर्य जर्मनी, इंगलैंड और अमरीका के संयुक्त राज्यो से है। ऐसी अवस्था मे अपने आदशो के प्रचार करने और इन लोगो के ग्रहण करने पर उनकी इन लोगो के हाथो मे क्या अवस्था होगी यह अनुमान लगाना कठिन नही है। यह निश्चय समझिये कि ईसा मसीह के उपदेशो की तरह ही आर्य-आदर्शों की भी दुरवस्था इन हाथो होगी—शायद उससे भी बुरी अवस्था हो—क्योकि हमारे आदर्श केवल भौतिक दृष्टि से नैतिक नही हैं बल्कि उनकी नीव तो आत्मा और अन्त मे उस सर्वव्यापक परम सत्ता की एकता पर निर्धारित है। इन ऊँचे सिद्धान्तो को समझ सकना अभी यहाँ के लोगो के बूते की बात नही है और समझकर उन्हे जीवन मे घटित कर सकना तो और भी दूर की बात है। आप चाहे विश्वास न करे किन्तु मै तो पात्र, कुपात्र और अपात्र मे अवश्य विश्वास करता हूँ। अध्यापक ठहरा।

मै समझता हूँ मैने आपके प्रश्न के उत्तर में अपने विचार काफी विस्तार से रख दिये हैं। संक्षेप मे मेरा उत्तर यह समझिये कि इन देशों में वैदिक धर्म प्रचार की आवश्यकता तो है किन्तु अभी किसी तरह भी गुजायश मुझे नहीं दिखलाई पड़ती। इन ईसाई जातियो की मनोवृत्ति को और भी अच्छी तरह समझने के लिये आजकल मै अपना सारा ख़ाली समय बाइबिल के अध्ययन मे लगा रहा हूँ। आपको यह पढ़ कर कौतूहल अवश्य होगा। यह अध्ययन मै अत्यन्त ही उपयोगी और रोचक पा रहा हूँ। मेरा अनुभव यह हो रहा है कि इस ग्रथ का अध्ययन अपने देश के प्रत्येक ऐसे समझदार व्यक्ति को कर लेना चाहिये जिसको इस धर्म के माननेवालो से किसी न किसी रूप मे सपर्क मे आना पड़ता हो। इस अध्ययन का विस्तृत परिणाम मैं मिलने पर सुनाऊँगा तभी यहाँ के देशो की यात्रा का विस्तृत हाल भी सुना सकूँगा।

(ख) माताजी को लिखे पत्रों से संकलित

मै पेरिस अच्छी तरह पहुँच गया और एक खुले हवादार आराम के होटल में ठहरा हूँ। यहाँ किसी तरह की तकलीफ नही है।

खाने का भी यहाँ पूरा सुबीता है। सुबह का नाश्ता तो अभी घर का ही ख़त्म होने को नही आया है। बाद को यहाँ की रोटी, मक्खन, दूध या चाय और मुरब्बे का नाश्ता हुआ करेगा। दोपहर और शाम को यहाँ की रोटी के साथ आलू का भर्ता, चुक़दर, कुम्हड़ा, टिमाटर मे बनी तरकारी, चुक़दर या आलू रसेदार मिलते हैं। रूसी लोग चावल की तहरी बनाते हैं जो अपने यहाँ की तहरी की तरह ही स्वादिष्ट होती है। मै तो इसे दही के साथ प्रायः रोज़ दोपहर को खाता हूँ। दूध गरम औटा हुआ रोज़ मिल जाता है। तीसरे पहर फलो का नाश्ता होता है। अगूर बहुत अच्छे और बड़े ||) सेर हैं। दाल के सिवाय यहाँ और हर एक चीज खाई जाती है और दुकानो पर बनी बनाई मिल जाती है। जहाज़ पर खाना ज़रूर अच्छा नही बनता था यहाँ अब खाने के बारे मे कोई कष्ट नही रहा है।

मेरी तंदुरुस्ती भी बिलकुल ठीक है। मोटा अभी ज़रूर नही हो पाया हूँ क्योंकि सफर लबा था, लेकिन शायद अब धीरे-धीरे हो जाऊँगा। कपड़े मेरे पास काफी हैं। मोटा कबल अभी से ओढना पड़ता है। जाड़ो मे यहाँ कमरे गैस, भाप, बिजली या कोयले से गरम रक्खे जाते हैं। इसकी अभी ज़रूरत नही पड़ी है।

यहाँ के लोग रोज़ नहीं नहाते हैं इसीलिए ग़ुसलख़ाने यहाँ कम हैं। इस होटल मे ४२ कमरे हैं और एक ग़ुसलख़ाना। कल मै नहाने गया था। इसका अलग १) देना होगा। जाड़ा भी इतना है कि हफ्ते मे दो-तीन मर्तबा नहाना काफी होगा। जिस्म अँगोछा रोज़ जा सकता है, बिना किसी ख़र्च के, क्योकि

हर कमरे मे दीवार मे ठडे और गरम पानी के पंप लगे हैं।

घर के अचार, मसाले, मुँगौरी, मेवा वग़ैरह सब रक्खी है। नाश्ता भी ख़त्म नही हो पाया है। खाने का सामान घर से भेजने की ज़रूरत नही है। जब ज़रूरत होगी तो मै ख़ुद लिख दूँगा।

२३-१०-३४

* * *

दुनिया की सख़्ती झेलने की लड़को की आदत डालना अच्छा ही है। रुई के फालो मे पले हुए बच्चे किस काम के। बिलकुल अपने सहारे अकेले रहने से और कुछ नही है तो अपने ऊपर भरोसा करने की शिक्षा हो रही है। मै तो इसे अच्छा ही समझता हूँ।

खाने-पीने का मुझे कोई कष्ट नही है। ।=) का सुबह दूध और डबलरोटी, मक्खन, मुरब्बा वग़ैरह खाता हूँ, ।।।) की दोपहर को रोटी, ।=) के तीसरे पहर को फल व मलाई-बिसकुट और कम से कम ।।) का रात का खाना। इस तरह २) रोज़ या ६०) महीना अपने ऊपर खाने पर ख़र्च कर रहा हूँ फिर खाने की तकलीफ ही क्या हो सकती है। इतना तो आप सब मिलकर भी नही खा रहे होंगे।

कल यहाँ एक हिंदुस्तानी दुकान का पता चल गया। वहाँ जाकर मैंने देखा। आम का अचार, चटनी, हल्दी, लौंग, ज़ीरा, बाँसमती के चावल, बेसन वग़ैरह सब चीज़े मिलती हैं। अभी तो घर का मसाला ही काफी है। ज़रूरत हुई तो इस दुकान पर मिल सकता है। रवा जब से मिलने लगा है तब से मोटे आटे के तलाश करने की ज़रूरत भी नही रही है। मूँग, उर्द, अरहर की दालों के सिवाय यहाँ हर एक चीज़ मिलती है। ये भी शायद कहीं बिकती होगी मुझे अभी पता नही है। मटर और मसूर की दाल यहाँ बहुत बिकती है।

इस हफ़्ते मैंने एक फ़ांसीसी महिला व उनके लड़के को खाने पर बुलाया

था। हलद्वानी के चावल व जवे बड़े स्वाद से उन्होंने खाये। आप को प्रणाम लिखने को कह दिया है और कह दिया है कि मुझे ये आपकी भेजी हुई चीज़ें बहुत स्वादिष्ट लगीं। उन वृद्ध बंगाली महाशय चक्रवर्ती को जब पिछले महीने खिलाया था तो उन्होंने भी आपको धन्यवाद लिखने को कहा था।

६-१२-३४

* * *

तो मेरी तसवीर आपको पसंद आई। यहाँ तो लोग मेरी उम्र २५-३० से ऊपर कूतते ही नहीं। काले सूट में मैं ख़ुद ही अपने को लड़का-सा दिखलाई पड़ता हूँ। यहाँ एक आध लोगों से ज़िक्र बच्चों का आया तो उनकी समझ में ही नहीं आता था कि मेरे पाँच बच्चे हो सकते हैं क्योंकि उनके ख़्याल में तो मेरी उम्र मुश्किल से २५, ३० जँचती है। ये लोग नज़र लगा देंगे। मेरी समझ में आप मेरी तसवीर पर राई नोन उतार दीजियेगा।

तो वह रूसी लड़की लाने की आपकी राय नहीं है। आपकी बहू तो अड़चन डालने को नहीं कहती हैं। बल्कि उनकी समझ में उन रुगिहा के बजाय कोई तंदुरुस्त औरत घर में हो तो सबको आराम मिलेगा। लेकिन जब आपकी राय नहीं है तो न सही। आप ही ने एक बार दूसरा विवाह करने की सलाह दी थी। अब आप ख़ुद ही बदली जाती हैं। मेरी समझ में दूसरी औरत की बनिस्बत नौकरानी ज्यादा आराम दे सकती, इसलिये मैंने यह प्रस्ताव आपके सामने रक्खा था। जाने दीजिये।

यहाँ सतरे और नारंगी अब ख़ूब बिकने लगे हैं। गन्ना न भेजियेगा। इस जाड़े में कौन खावेगा। मूँगफली, बादाम, अख़रोट, किशमिश सभी मेवा यहाँ बिकती हैं। अख़रोट यहाँ के बहुत अच्छे होते हैं।

बर्तन मैंने और नैथानी ने मिलकर ख़रीदे थे। वे सब अब मेरे ही पास हैं। एक कढाई हत्थेदार, दो कटोरदान हत्थेदार—एक दूध गर्म करने को व दूसरा चावल वग़ैरह बनाने के लिये तथा दो-दो रक़ाबी, चम्मच, प्याले आदि।

एक अलमारी में तो पूरी गृहस्थी हो गई है। चटपटा खाना खाने की मेरी आदत छूटती जाती है। एक दिन मैने फूल आलू जान-बूझ कर चटपटे बनाये तो दूसरे दिन दिन भर पेट मे जलन पड़ती रही। देखते-देखते अब गोश्त व अडे आदि से उतनी घृणा नही मालूम होती। लेकिन आप यह न डरे कि मै खाने लगूँगा। मै यह बताता हूँ कि सस्कार भी कैसी चीज़ है।

मैने अपना वज़न एक बार लिया था अब फिर किसी दिन लेकर देखूँगा। नाप के हिसाब से तो मैं कुछ मोटा हो गया हूँ। वेफ़िक्री में आदमी को मोटा हो ही जाना चाहिये। पता नही आप बड़े दिन पर कहीं गई या नही। गरमियो से पहले एक बार कही ज़रूर घूम आइये। घर मे पड़े-पड़े वही एक वात घुटती है। यहाँ की औरते तो ऐसी हट्टी-कट्टी दौड़ती भागती नज़र आती हैं कि देखकर तबियत ख़ुश हो जाती है।

यहाँ जाड़ा अभी दिसबर के आख़िर तक भी ज़्यादा नही है। लोगो का कहना है कि बरसों से इतना कम जाड़ा नही पड़ा है। यहाँ के लोग तो दुखी हैं क्योकि बर्फ जब तक नही पड़ेगी तब तक उनके जाड़ों के बहुत से खेल खिलवाड़ बद रहेंगे। आशा है वहाँ सब कुशल होगी। बच्चे कब तक घर लौटेंगे? जहाँ तक बने आप ख़ुद ख़ूब ख़ुश रहें और सबको भी ख़ुश रक्खे।

२१-१२-३४

* * *

यहाँ मुझे कई शाकाहारी रेस्टराँ का पता चल गया है। पेरिस में एक सभा है जो शाकाहार का प्रचार करती है। उसके तीन रेस्टराँ (धावे) हैं। उनके यहाँ मामूली तौर से अडा चीज़ो मे नहीं पड़ता है। रोटी भी बिलकुल मामूली मोटे आटे की बनती है। अब तो मै उनमे अक्सर जाने लगा हूँ। यहाँ फूलगोभी, मटर, नये आलू ख़ूब बिकने लगे हैं। गडरी का साग भी यहाँ बिकता है। आपको सुन कर ताज्जुब होगा कि यहाँ तिल बुग्गा भी बिकता है। और बहुत अच्छा। मै अक्सर खाता हूँ। गरमा भी यहाँ बना बनाया बहुत ही अच्छा

मिलता है। मूँगफली भी आजकल गरमागरम बिकने लगी है गो यहाँ चेस्टनट अर्थात् एक और क़िस्म की भुनी हुई मूँगफली खाने का बहुत रिवाज है। इससे आप अदाज़ लगा सकेंगी कि यहाँ मामूली तौर से खाने की सब चीज़े मिल जाती हैं।

आपके 'परशाद' बोलने का यह असर हुआ कि यहाँ इस साल नवबर दिसबर मे भी बिलकुल जाड़ा नही पड़ा। हर साल पड़ने लगता था। यहाँ के लोग जाड़े के लिये व्याकुल थे। उन्हें पता ही नही था कि आपने 'परशाद' बोल कर उसे रोक रक्खा है। अब इस हफ्ते से जाड़ा कुछ बढा है। मैने कल नैनीतालवाले कपड़े का कोट पहना तो वह अब भी बहुत ही गरम पाया। उसके साथ की बडी तो उतार ही देनी पड़ी। यहाँ मकानों के अदर गरम पानी के नलों से कमरे ख़ूब गरम रहते हैं इसलिये अदर तो पता ही नहीं चलता कि कही जाड़ा भी है। बाहर जब निकलते हैं तो कपड़े के बडलो मे बद। जितनी सर्दी होती है बस नाक कान को भुगतनी पड़ती है। चाचा की दी हुई कस्तूरी अभी रक्खी ही है। केसर ज़रूर क़रीब क़रीब रोज़ दूध मे इस्ते-माल करने लगा हूँ। यहाँ के जाड़े से जैसा लोग डरते हैं वैसी बात नहीं है क्योंकि इतज़ाम पूरा रहता है।

नज़र लगने को आप न डरें यहाँ काफी गोरे चिट्टे खूबसूरत लोग हैं उनके बीच मे मुझे कौन देखेगा। हाँ, अफ्रीका के हबशियों से हम लोग लाख दर्जे अच्छे हैं। उन्हे देखने से बच्चे तो शायद डर ही जावे।

१०-१-३५

* * *

एक दिन यहाँ बर्फ पड़ी थी। बिलकुल ऐसा मालूम होता है कि जैसे ढेर की ढेर कपास कोई आसमान से बिखेर रहा हो। ओलों की तरह सख़्त नही होती बल्कि रुई की तरह मुलायम-सी होती है। ज़मीन पर ज़्यादा ढेर हो जाने पर वह सख़्त हो जाती है। बर्फ पड़ने से पहले ठंड ज्यादा हो जाती है।

किन्तु बर्फ पड़ते समय या बाद को फिर तेज़ ठंड नहीं रहती। आजकल जनवरी का महीना होने पर भी दिसंबर की बनिस्बत कम ठंडा हो गया है।

विश्वेश्वर प्रसाद का आज ही एक ख़त मिला था। वे और नैथानी लंदन में सकुशल हैं। वे अपना मकान बदलनेवाले हैं। सोचते हैं कि विलायत में रह कर भी दाल-रोटी खाते रहे तो कुछ न किया। इस बार शायद वे लोग एक अँग्रेज़ी घर में जा रहे हैं जिससे अँग्रेज़ी खाने का स्वाद भी उन्हें मिल सके।

यहाँ आजकल नये आलू और मटर ख़ूब बिक रहे हैं। फलों में संतरों की फसल है। एक दिन मैंने सूजी का हलवा बनाया था। इतना अच्छा बना कि आप लोग भी उतना अच्छा नहीं बना सकतीं। मुझसे बिना पूछे आप यहाँ कोई चीज़ न भिजवावें। यहाँ चुंगी वग़ैरह के बड़े झगड़े हैं। मुझे अभी किसी चीज़ की ज़रूरत भी नहीं है। आपकी रक्खी हुई सब चीज़ें चल रही हैं क्योंकि कभी कभी ख़र्च होती हैं। चक्रवर्ती महोदय के घरवालों ने अमरस भेजा था। यहाँ चुंगी में समझा गया कि कमाया हुआ चमड़ा है अतः उस-पर बहुत कसके चुंगी उन लोगों ने ली। अब वह लिखा पढ़ी कर रहे हैं।

१८-१-३५

* * *

मैं यहाँ लंदन अच्छी तरह पहुँच गया। स्टीमर का सफ़र सिर्फ़ डेढ़ घंटे का था गो समुद्र कुछ ख़राब था। डेढ़ घंटे में ही बाज़-बाज़ लोगों को कई-कई बार उल्टी हुई। मैं तो ठीक रहा। यहाँ वक़्त ख़ूब घूमने-फिरने, हँसने-बोलने में कट रहा है। कल रात ही एक हिंदुस्तानी भोजनालय में खाना खाने गये थे। छः महीने बाद रोटी, उर्द की दाल, भिंडी, मटर, पकौड़ी, अचार, पापड़ वग़ैरह पूरा हिंदुस्तानी खाना खाया। खाना यहाँ अच्छा बनता है।

यहाँ लंदन में एक दो दिन ख़ूब जाड़ा पड़ा। जिस दिन धूप निकल आती है उस दिन सुहावना हो जाता है। यहाँ का अजब मौसम है। लंदन शहर पेरिस से भी बहुत बड़ा है गो उतना सुंदर नहीं है। बोली यहाँ की भी बहुत

समझ मे यकायक नही आती है। अजब तरह से मुँह मे बोलते हैं। इस हफ़्ते अच्छी तरह घूमना हुआ। कुछ काम भी हुआ।

१९-४-३५

* * *

मै कल शाम लदन से पेरिस अच्छी तरह वापिस आ गया। लौटते पर समुद्र ख़राब नही था इसलिये किसी को कुछ तकलीफ नही हुई।

कल रात ही रामकुमार सकसेना से मिलने गया था। वे अच्छी तरह २३ तारीख़ को यहाँ आ गये थे। तीन-चार हिंदुस्तानी उनके जहाज़ से योरप घूमने आये थे। वे पेरिस देखने को यहाँ रुक गये हैं और रामकुमार सकसेना के होटल मे ही ठहरे हैं। रामकुमार सकसेना से सब सामान भी मिला—नाश्ता, दाले, चावल, किताबे तथा धूपबत्ती। सब चीज़े ठीक चली आई हैं। आज सुबह बेसन व मूँग के लड्डुओ तथा शकरपारो का नाश्ता किया था। लेकिन यहाँ के खाने के साथ अपना खाना मेल नही खाता। छिले बीजो की पोटली की फकी तो मैने रात ही लगा दी थी। परसो रात लदन मे पूरी-तरकारी, रबड़ी, पकौड़ी वग़ैरह पूरा खाना खाया था। लदन मे मन चलने पर देसी खाना मिल जाने का आराम है। रामकुमार के साथियो मे से एक के पास पान थे। योरप मे पहली बार कल रात पान खाया।

२९-४-३५

* * *

दुबे जी से आपका भेजा हुआ सब सामान ठीक मिल गया। अचार भी ठीक आ गया। आपने भुना रवा व हल्दी बेकार भेजी। पहले की ही ये चीज़े अभी काफी रक्खी हैं। चावल, दाल ज़रूर काम आ जावेगे। मेवा भी मिली। एक पोटली में सिंघाड़े कुटे हुये से हैं वह जाने क्या चीज़ है समझ मे नहीं आई। मेरे पास बहुत सामान जमा हो गया है।

यहाँ जाड़ा फिर बहुत कम हो गया है लेकिन यहाँ के मौसम का कुछ

ठीक नही रहता—दो दिन धूप, दो दिन बादल, दो दिन पानी। अक्सर दो-दो घटे में मौसम बदलता रहता है। अब मई के महीने में बादल रहने व पानी बरसने पर भी ठड नही बढ़ती है।

मैं ख़ूब अच्छी तरह हूँ। रामकुमार व दुबे जी के आ जाने से और भी इतमीनान हो गया है गो अब तो अकेले रहने की काफ़ी आदत पड़ गई है। यहाँ हर जगह अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग है। आशा है आप ख़ूब अच्छी तरह होगी। आपका घर तो अब उतना सूना नहीं होगा।

२४-५-३५

* * *

यहाँ जून मे मौसम काफी अच्छा रहता है। अगर दो दिन भी दिन भर धूप निकल आती है तो गरमी हो जाती है। पिछले हफ्ते एक दिन तो धूप में चलने मे पसीना आता था। लेकिन गरम कपड़े ही पहिनने पड़ते हैं क्योंकि अगर एक दिन धूप है तो दूसरे दिन पानी बरसता है। खिड़कियें भी अब दिन-रात खुली रह सकती हैं। रात को एक कबल ओढ़ना काफ़ी होता है। एक ऊनी बनियायन ज़रूर पहिने रहता हूँ।

मेरा काम निपट आया है। अब अगले पाँच-छः महीने काम और मौसम दोनो लिहाज़ से ज़्यादा आराम से कटेंगे। मै किफायत किसी तरह की नहीं करूँगा इसका आप इतमीनान रक्खे। आपने साल गिरह के नाम का कोई कपड़ा ख़रीदने को कहा है। किसी दिन बाज़ार गया तो ख़रीद लूँगा।

यह जान कर सतोष हुआ कि आपकी आँखे बेहतर हैं व आपकी तंदुरुस्ती भी ठीक है। हर एक आदमी को अपने शरीर की ज़रूर पूरी परवाह रखनी चाहिये। शास्त्रो में लिखा है कि शरीर ही धर्म का साधन है। अब तो वहाँ पानी बरस गया होगा।

१४-६-३५

* * *

आपका पत्र मिला। श्रीगोविंद तिवारी के दाल-चावल न लाने से मेरा ज़रा भी हर्ज नहीं हुआ। एक तो अभी पिछले दिनों के भेजे हुये दाल-चावल काफी रक्खे हैं, इसके सिवाय लदन से लौटने पर विश्वेश्वर प्रसाद ने मूँग की दाल का एक बड़ा थैला मेरे साथ कर दिया था क्योंकि उन्हें ज़रूरत ही नही पड़ती। यह तो चलने तक भी नही निवड़ेगी। चावल देहरादून के यहाँ भी मिल जाते हैं। फिर अगले महीने लदन जा रहा हूँ वहाँ सब चीज़ें मिल ही जाती हैं। अगले दो-तीन महीने घूमने-फिरने की वजह से इन चीज़ों का ख़र्च भी कम ही रहेगा। आप चीज़ों के न आने का ज़रा भी अफ़सोस न करे।

श्री सुशीला देवी व उनके बच्चो के आने का हाल पिछले पत्र मे लिख चुका हूँ। वे तीन-चार दिन यहाँ रही थीं। बच्चो की वजह से बड़ी रौनक रहती थी। उनका लड़का सात बरस का है और चपटी नाक और पक्के रग मे सुशील बाबू से बिलकुल मिलता है। लड़की २½ बरस की है। दोनो मे प्यार और लड़ाई ख़ूब रहती थी। रात को इन लोगों का सोना ख़ास ढग से होता था। खेलते-खेलते दोनों मे लड़ाई होती थी और मनोरमा अजय बाबू को कसके काटती थी। इस पर अजय बाबू का भेकड़ा पुरता था और उसके साथ ही मनोरमा की पिपिहरी बजती थी। मनोरमा कहती जाती थी कि अब मै भइया को नही काटूँगी। रोने की हिचकियो के साथ ही दोनो सो जाते थे। आपकी सुशीला देवी मुस्तैदी मे ठीक लूकरगजवाली की लड़की हैं। घर पहुँच कर सबसे पहला सुधार वे आसानी से खाना बनाने और वक्त से खाने के संबध में करनेवाली हैं। अभी विलायत का नया रग है। दो हफ़्ते योरप घूमकर १० जुलाई को वे जहाज़ लेंगी।

बच्चों का हाल मिला। तो सुशील बाबू पक्के मर्द हो गये जो सुची अपने हाथ से करने लगे हैं। मनोरमा को देखकर मुझे उम्मी का बिलकुल ख़्याल आ गया जैसी वह आज-कल शायद होगी। सुशील की बहू चाचा जी की

अलमारी में रक्खी रहती है यह नई ख़बर है। मेरी तो "पक्का में बंग" रहती थी सो थोड़ी बहुत सच्ची बात निकली।

यहाँ आजकल आड़ू बहुत उम्दा बिकने लगे हैं। तीन पैसे का एक आड़ू बहुत अच्छा बड़ा रसीला आता है। यहाँ के हिसाब से बहुत सस्ता है क्योंकि इन लोगो को पैसे-पैसे पड़ता है। दूसरे नये फल व तरकारियाँ भी आ गई हैं। आलू और मटर ≋) सेर हैं।

यहाँ ख़रबूज़े बहुत उम्दा आते हैं। छोटी-सी बटिया आठ-नौ आने की आती है लेकिन मिठास मे सर्दे को मात करती है। यहाँ अब अक्सर गरमी रहने लगी है। आज तो गरम कोट मे पसीना आता था लेकिन शाम को बूँदाबाँदी होकर मौसम कुछ अच्छा हो गया।

२७-६-३५

* * *

हम लोग तीनों साथ-साथ सफर कर रहे हैं इसलिये बड़ा आराम और इतमीनान है। यहाँ बेलजियम में हम लोग आपकी सुशीला देवी के बताये एक होटल मे ठहरे हैं। इसे एक स्त्री चलाती हैं। यहाँ खाने का भी इतजाम है। गोश्त न खानेवाले को मामूली जगहों मे कुछ दिक़्क़त पड़ती है। इन स्त्री से कल मैने कह दिया था कि मै गोश्त नही खाता हूँ लेकिन कल जो सेम की फली हम लोगो के सामने आई उसमे एक-दो गोश्त के टुकड़े भी थे। शायद गोश्त और फली साथ उबाली थी और फली अलग करके मुझे दे गई क्योंकि मैं गोश्त नही खाता था। ख़ैरियत यह थी कि मैने खाई नही। जाँच-पड़ताल मे पता चल गया। मक्खन, रोटी, उबले आलू, फल, दूध हर जगह मिल जाता है इसलिये आदमी भूखा नही रह सकता। इसके सिवाय मै अपने साथ भी खाने का कुछ सामान रखता हूँ। आप मेरे खाने की फ़िक्र न करे। भूखा कही नही रहूँगा।

१९-७-३५

* * *

हम लोग बेलजियम से जर्मनी अच्छी तरह पहुँच गये। रास्ते में संयोग से विश्वेश्वर प्रसाद का अब तक बराबर नुक़सान होता चल रहा है। पेरिस से बेलजियम आने पर रेल मे उनका चाभी का गुच्छा रह गया। परसों ब्रूसेल्स के स्टेशन पर हम लोग रेल मे असबाब रखकर स्टेशन तक रुपया बदलने गये थे। लौट कर देखा तो उनका अटैची केस ग़ायब। बहुत ढूँढा पता नहीं चला। कोई उठा ले गया। कुछ काग़ज़ो के सिवाय उसमें उनका ४०) रुपये का नया फोटो का कैमरा था। यहाँ योरप मे भी चोर-उचक्कों की कमी नही है। आज-कल नुमायश की वजह से ब्रूसेल्स में ख़ास तौर से ऐसे लोगों का अड्डा है। कैमरे के चले जाने का हम सब को बहुत अफ़सोस है। पुलिस को रिपोर्ट कर दी है लेकिन मिलने की कोई आशा नही है। यह ख़ैरियत हुई कि उसमे रुपये, पासपोर्ट या कोई और जरूरी काग़ज़ नही थे।

पेरिस से निकलते ही हम लोगो को ठडा मौसम मिल रहा है। यहाँ जर्मनी मे तो नैनीताल की-सी सुहावनी ठड है। हवा भी तेज़ चलती है। हम लोग अपने साथ कपड़े काफी ले आये हैं और जरूरत पड़ने पर ख़रीदे भी जा सकते हैं लेकिन इसकी शायद नौबत नही आवेगी। हम लोग जहाँ तक बनेगा दिन मे सफर करेगे इसलिये आप जरा भी फिक्र न करे। इस होटल मे मुझे आलू, मटर, गाजर वग़ैरह सब तरकारियें खाने को मिल गईं। डबल रोटी मक्खन की तो कमी ही क्या हो सकती थी। पहले दिन होटलवाला तरकारियो को सजा कर ऊपर शोभा के लिये दो अडे जरूर रख लाया था। लेकिन मेरे मना कर देने पर फिर ऐसा नही किया। होटल का आदमी ताज्जुब करता था कि मुझे अडे पसद नही हैं।

३१-७ १५

* * *

हम लोग यहाँ बर्लिन में एक हिंदुस्तानी होटल में ठहरे हैं। लदन के बाद यहाँ दूसरी बार देशी खाना—दाल, चावल, रोटी, पूरी, तरकारी आदि खाने

को मिला। रामकुमार बाबू को घर छोड़ने के बाद पहली बार देसी खाना खाने को मिला था इसलिये वे भूखो की तरह खाने पर गिरे। लेकिन यहाँ का देसी खाना कई वक़्त नही खा मिलता है। मैदा की रोटी, पालिश किये चावल, और बहुत मसालेदार तरकारी पेट में ख़राबी पैदा करने लगती है। तो भी अपना खाना मुँह मे अच्छा ही लगता है।

२५-३-३५

* * *

हम लोगों की योरप यात्रा अच्छी तरह हो रही है। आज यहाँ म्यूनिच मे रामकुमार बाबू व दुबे जी मिल गये हैं। एक हफ्ते स्विटजरलैंड, जो यहाँ का अलमोड़ा नैनीताल-सा है, घूम कर १० अगस्त को विश्वेश्वर प्रसाद को वेनिस से भेज कर इटली मे श्रीगोविंद तिवारी के यहाँ १५, २० दिन को चला जाऊँगा।

रास्ते मे खाने की कही तकलीफ नही हुई। वीएना मे परसो एक अच्छा शाकाहारी भोजनालय मिल गया था वहाँ भरपेट मटर-फूलगोभी की तहरी खाई। वहाँ भुट्टे भी बिकते थे। रामकुमार बाबू व विश्वेश्वर प्रसाद को अंडे, मुर्ग़ी, बतख़ आदि भी मिल जाते हैं। गाय के गोश्त के डर से गोश्त ये लोग नहीं खाते हैं।

३१-७-३५

* * *

आपकी लंबी चिट्ठी आज सुबह यहाँ वेनिस मे मिली। हम लोगों का दौड़-धूपवाला सफर तो अब ख़त्म हो गया। अगले महीने सवा महीने तो मैं दो जगह १५, १५ दिन रह कर आराम करने को सोचता हूँ। यहाँ इटली मे गरमी कुछ-कुछ अपने यहाँ की-सी ही है।

इस सफर मे कहीं भी तकलीफ नही हुई। एक ओर रामकुमार सक्सेना मुंतज़िम और किफायत करनेवाले थे तो दूसरी तरफ विश्वेश्वर प्रसाद लड़कों

की तबियतवाले और खर्चीच थे, इसलिये आराम और किफायत दोनो ही रहे। इस पर भी इस महीने डेढ महीने के सफर मे क़रीब एक हज़ार रुपया उठ जायगा। शाकाहारी आदमी अगर चाहे तो हर जगह निभा सकता है। कोई हाथ-पैर ही न हिलाना चाहे तो दूसरी बात है। यहाँ इटली में आकर ख़ूब सुर्ख़ बढिया तरबूज़ खाने को मिला। मेरी तदुरुस्ती सफर मे बराबर ठीक रही। एक दिन जर्मनी मे ज़रूर थक जाने की वजह से आराम करना पड़ा था।

९-८-३५

* * *

यहाँ इटली की माँये बिलकुल अपने देश की माँओ की तरह हैं। कल जब मै रेल मे आ रहा था तो मैने देखा कि गो दरवाज़े मे दो-दो कुडिये बन्द थी लेकिन तब भी जब तक एक छोटा बच्चा दरवाज़े के पास खड़ा रहा बच्चे की माँ बच्चे का हाथ बराबर पकड़े रही। बच्चो का लाड़-प्यार यहाँ बिलकुल अपने देश की तरह होता है इसीलिये यहाँ के बच्चे भी नाज़ुक और कमजोर से दिखलाई पड़ते हैं।

यहाँ रोम मे तरबूज़ गली-गली बिकता है। गरमी तो ज्यादा नहीं है। सुनते हैं पिछले हफ़्ते ज्यादा थी। जैसे अपने यहाँ जाडा कम दिनों रहता है इसी तरह योरप मे गरमी कम दिनों रहती है। इटली मे तो बर्फ भी नही पडती।

१०-८-३५

* * *

यहाँ दक्षिण फ्रास में अगूर की खेती मामूली नाज की खेती की तरह होती है। इतना अगूर मैंने आज तक कभी नहीं देखा। यहाँ का मौसम गरम होने की वजह से सरसों और बथुआ तक के दरख़्त यहाँ दिखलाई पड़ते हैं। गो यहाँ के लोग इन्हें खाना नहीं जानते।

तरबूज़ और ख़रबूजा यहाँ ख़ूब खाने को मिलते हैं। आडू भी यहाँ बहुतायत

से होता है—छोटे सेब के बराबर व अन्दर से पीला और सख्त निकलनेवाला। आड़ू यहाँ चाक़ू से तराश कर खाना पड़ता है। एक दिन भुट्टे खाने को मिले। लेकिन यहाँ लोग भुट्टे साबत उबाल लेते हैं और फिर मक्खन और नमक लगा कर खाते हैं। फ्रास के इस हिस्से में अजीर भी बहुत है और ख़ूब मीठा होता है।

मैं यहाँ नीस में क़रीब १५ दिन और रहने को सोचता हूँ। फिर पेरिस चला जाऊँगा। पेरिस का सफर यहाँ से सिर्फ दिन भर का है। इस आश्रम में बुड्ढी फ़ासीसी औरतें बहुत हैं। वे हिंदुस्तान का हाल बड़े चाव से पूछती हैं।

यह लिखियेगा कि इस बार दशहरा कब पड़ रहा है। मेरे पास पत्रा या जत्री न होने की वजह से कुछ पता नहीं चलता है। मै अपनी एक तसवीर बड़ी करा कर भेज रहा हूँ। इसमें मै कुछ ज्यादा तदुरुस्त लगता हूँ। वेहतर तो ज़रूर हूँ।

२८-८-३५

* * * *

मै कल रात पेरिस अच्छी तरह पहुँच गया। यह सूचना देने के लिये ही यह चिट्ठी लिख रहा हूँ क्योकि आपको इस बारे मे फिक्र थी। यहाँ पेरिस मे अब गरमी बिलकुल नही है बल्कि शाम को कुछ-कुछ ठड होने लगी है। इधर चार-पाँच दिन से कुछ बादल भी रहने लगे हैं। लेकिन अभी बीच-बीच में खुलेगा। घटाटोप का मौसम तो दिसबर से शुरू होता है।

यहाँ आकर अपने कैलेंडर की मैने पूरी एक गड्डी काग़ज़ फाड़ कर फेंके लेकिन अब भी कुछ बाक़ी रह गये हैं गो अब ज्यादा नहीं मालूम होते। मैं अपने पुराने कमरे मे ही ठहरा हूँ। असबाब भी सब ठीक निकला। आज मैने सामान देखा तो उसमे मुँगौरी, मसाले वग़ैरह ढेर के ढेर निकले। अब तो खाना मैं बहुत ही कम बनाता हूँ। झंझट मालूम होता है। ये सब चीज़े ख़राब होंगी। वापस घर लाना तो मुमकिन नही है।

१३-९-३५

* * * *

आपके पत्र का उत्तर पिछली डाक से दे चुका हूँ। विश्वास है अब आपको लड़ाई न होने का यक़ीन हो गया होगा और आपने घबडाना छोड़ दिया होगा। मै सब बाते पिछले पत्र मे ठीक ठीक समझा चुका हूँ।

यहाँ आज कल अगूरो का नौ रोज़ है। चार-पाँच आने सेर अगूर बिक रहे हैं। यहाँ वालो को तो चार-पाँच पैसे सेर ही पड़ते हैं। लेकिन यहाँ के लोग अगूर खाने की बजाय अगूर की शराब ज्यादा पसद करते हैं। वह इन लोगो को डेढ-दो आने बोतल पड़ती है। अगूर का रस हम लोगो को ।=) का अद्धा मिल जाता है। लेकिन यहाँ के तर मौसम मे अगूर या अगूर के रस का इस्तेमाल बहुत नही हो सकता।

आज कल अपने यहाँ तो दशहरे की तैयारी होगी। इलाहाबाद मे राम-लीला बरसों से बद है नही तो बच्चो को देखने को एक तमाशा हो जाता।

२७-९-३५

* * *

आपकी पिछली लबी चिट्ठी का उत्तर दे चुका हूँ। अफ्रीका की लड़ाई शुरू हो जाने का हाल तो आपको सुनने को मिला ही होगा। कल जब यहाँ इसकी खबर आई तो मुझे सब से पहले आपका ध्यान आया कि आप जब सुनेंगी तो सब बाते ठीक न समझने की वजह से बेकार परेशान होंगी। अफ्रीका देश मे जहाँ लड़ाई हो रही है उस देश तक समुद्र और ख़ुश्की के रास्ते से पहुँचने मे यहाँ से सात-आठ दिन लग जाते हैं। बल्कि इलाहाबाद से वह जगह ज्यादा नज़दीक है। इलाहाबाद से आदमी चार-पाँच दिन मे ही वहाँ पहुँच सकता है। इससे आप अदाज़ लगा सकती हैं कि लड़ाई यहाँ से कितनी दूर पर हो रही है। एक तरह से आप उसके ज्यादा नज़दीक हैं। जो हो उसका असर हिंदुस्तान और योरप पर कुछ नही पड़ सकता यह आप निश्चित बात समझे। यहाँ के अख़बारवालो ने तो बीसियो ख़बर भेजनेवाले और तसवीरे लेनेवाले ख़ास लड़ाईवाले मुल्क मे भेज रक्खे हैं जिससे ताज़ी

ताज़ी आँखो देखी ख़बरे जल्द मिल सके। वह मसल समझिये कि किसी का घर जले और कोई तापे।

मेरा ख़्याल था कि यह लड़ाई आख़िर बच जावेगी लेकिन बच नही पाई जो हो हम लोगो के रहने के देश फ़्रास से और इन लड़ाईवाले देशो से कोई भी सबध नही है इसलिये आप हम लोगो के बारे में ज़रा भी फ़िक्र न करे। हम लोगो को यहाँ अपनी कोई भी चिंता नही है हाँ, घर के लोगो की फ़िक्र की बात ज़रूर सोचते हैं कि ठीक बात न समझने की वजह से आप सब लोगो को बेकार परेशानी होगी। अपने यहाँ तो लड़ाई का नाम ही हउआ है। मैं आशा करता हूँ आप सब बाते समझ कर बेकार की फ़िक्र में नही पड़ेगी और अपने मन को सुचित्त रखेगी।

अगर सचमुच यहाँ कोई अदेशे की बात हुई तो हम लोग फ़ौरन ज़रूर चल देगे लेकिन ख़्याली डर से कोई समझदार आदमी अपने काम लौटपौट नही करता है। रामकुमार जी और दुबे जी की भी यही राय है। मुमकिन है हम सब लोग साथ ही पहुँचे।

यहाँ जाड़े के पहिले तीन महीने पतझड़ का मौसम रहता है वही आज कल है। इन महीनो मे थोड़ा बहुत पानी भी बरसता है। लदन से एक साहब की चिट्ठी आई थी। वहाँ लोग पानी से आजकल बहुत परेशान हैं। यहाँ तो पानी बहुत नही बरसता है। मैने अंदर की गरम बनयायन पहनना शुरू कर दी है। बाहर के गरम कपड़े तो मुश्किल से दस-पंद्रह दिन को छुटे थे। ओवरकोट का जाड़ा महीने भर बाद से शुरू होगा। मेरी तंदुरुस्ती बिलकुल ठीक है।

४-१०-३५

* * *

आपने सूरदास जी का पद बहुत अच्छा लिखा है। ऊधो के ज्ञान मार्ग का जवाब है। लेकिन मेरा तो कहना है कि मन लगाना ही है तो संसारी चीज़ों

की अपेक्षा ईश्वर में लगाना बेहतर है। इससे फिर कोई कष्ट नहीं होता क्योंकि आदमी से ईश्वर को कौन छीन सकता है।

अफ़्रीका की लड़ाई से रास्ता कोई भी नही रुका है। इसी हफ़्ते हिंदुस्तान से दो प्रोफेसर आये हैं वे बतलाते थे कि रास्ते मे अफ्रीका की लड़ाई का कहीं भी कोई निशान देखने को नहीं मिला। मैने सोच लिया है कि अगर इटली के जहाज़ से लौटना ठीक नही मालूम हुआ तो अँग्रेज़ी, फ्रासीसी, जापानी किसी देश का जहाज़ ले लूँगा। ये तो हर हफ़्ते आते-जाते हैं। इटलीवाले तो पद्रहवे दिन आते-जाते हैं। उम्मीद तो यहाँ लोगों को यह है कि इस महीने मे शायद इटली-अबीसीनिया मे समझौता हो जावेगा। इन बातों के बारे मे निश्चित अनुमान लगाना कठिन होता है। जो हो यहाँ ज़रा भी कोई फिक्र की बात नही है। यहाँ से लड़ाई बहुत बहुत दूर है।

कई हफ़्ते बाद यहाँ कल और आज दिन दिन भर धूप रही। घमाने को हजारों आदमी, औरते, बच्चे पार्कों मे निकल पड़े। रात को अब यहाँ सर्दी कुछ तेज़ पड़ने लगी है। मेरी होटलवाली एक रज़ाई आज मेरे बिस्तरे मे और बढा गई है। जौ की बाल मैंने कान मे रख ली थी। सब बच्चों का वज़न भी मिला। सुशील से कहियेगा कि दूध ज्यादा पिये नहीं तो पिम्मी उन्हें वज़न मे हरा देगी।

खाने का पूरा आराम है। आज सुबह होटल मे आटे की रोटी के तीन टुकड़े, गंगाफल, गाजर, सेब भुना मीठा, गर्मा और शहद मैने खाया था। इससे आप अदाज़ लगा सकती हैं कि यहाँ खाना कितना अच्छा होता है। चीज़े बनाने का ढग जुदा है। परसों आपके भेजे सामान मे उरद की दाल निकल आई, उसकी खिचड़ी मैंने बनाई थी। पिछले हफ्ते दो दिन फ्रासीसी घरों मे दावतों में चला गया था। आज शाम केसकर साहब तहरी व आलूगोभी खिलावेंगे। मैने अब सुबह दूध मँगवाना फिर से शुरू कर दिया है। सरदी की भी मैं पूरी एहतियात रखता हूँ। एक महीना और काटना है अब तो सब समय

कट ही आया है।

१४-१०-३५

* * *

दिवाली अगले शनिवार को है। हम लोग आपस में चायपानी करने को सोचते हैं। लखनऊ के एक प्रोफेसर इस होटल में और आ गये हैं। उनसे गपशप रहती है। आशा है आप अच्छी तरह होगी।

आपका पत्र मिला। बजाय शनिश्चर के हम लोगो ने यहाँ दिवाली कल इतवार को मनाई थी। तीसरे पहर को नाश्ता - हलवा, पापड़ वग़ैरह— बना। शाम को गुजरातियो के यहाँ दावत थी। क़रीब १०० हिंदुस्तानी जमा थे। खाना देसी गुजराती बहुत अच्छा था—पूरी, आलू, बैंगन, मटर, मूँग और साबित चने की दाल, चावल, रायता, दूध-पाक, आलू व पालक की पकौड़ी, नीबू का अचार—सचमुच पक्की दावत थी। बाद को गाना वग़ैरह होता रहा। कल सयोग से सुबह भी मैदम मोरॉ के यहाॅ पूरी खानी पड़ी। पेरिस मे दोनों वक्त पूरी खाई जो घर पर भी नही खाता था।

रामकुमार जी के साथ चलने का गड़बड़ हो गया है इसका हम सब को अफ़सोस है। क्या किया जाय। यो अलग आने मे कोई डर नही है लेकिन साथ मे वक्त अच्छा कट जाता है। मैने अभी असबाब ठीक करना शुरू नहीं किया है वैसे चलने के सिलसिले के बहुत से काम निकल रहे हैं। मै ऐसी कोई चीज़े नही ख़रीद रहा हूं जो साथ मे बोझ हो जावे और बबई मे चुगी देनी पड़े। मुझे ख़ुद ख़्याल है। सर्दी अब फिर कम हो गई है। लेकिन साथ ही हर वक्त घटाटोप रहने लगा है और पतझड़ ख़ूब होता है।

२८-१०-३५

(ग) छोटे बच्चों को लिखे पत्रों के कुछ नमूने

पेरिस

प्रिय मुन्नन

यहाँ आज कल बड़े दिन की वजह से बाजार मे ख़ूब रौनक़ रहती है। जैसे अपने यहाँ जन्माष्टमी पर झाँकी बनती हैं वैसे ही यहाँ बड़ी बड़ी दूकानों पर चलते-फिरते बड़े बड़े खिलौनो की झाँकी बनी हैं। तरह तरह की चीज़े भी ख़ूब बिकती हैं। अगर तुम लोग यहाँ होती तो बाजार घूमने मे बहुत अच्छा लगता।

बडे दिन का त्योहार ईसाइयो की जन्माष्टमी का-सा त्योहार है। बड़े दिन पर ईसा मसीह पैदा हुये थे और जन्माष्टमी पर श्रीकृष्ण जी।

तुम्हारे,

'पापा'

* * *

चुन्नारानी, नमस्ते

तुम पूछती हो कि 'क्या फ्रास की चिड़ियाँ बोलती हैं ?' वाह तुम्हें इतना भी नही मालूम। क्या तुमने कभी कोई गूँगी चिड़िया भी देखी है ? भाबी जी के कमरे मे जाकर सुन लो। अपने देश की चिड़ियाँ भी तो बोलती हैं। जो हो चिड़िया की बताई ख़बर ग़लत नहीं निकली कि चुन्नी ने पापा के लिये डिब्बी लेकर रक्खी है। अब मुझे जल्दी पड़ रही है कि कब मैं घर पहुँचूँ और चुन्नी की ख़रीदी डिब्बी देखूँ।

तुम्हारे,

'पापा'

* * *

पैरिस

प्रिय मुन्नन-चुन्नन

तुम्हारे टेढ़ेमेढ़े कटे काग़ज़ों पर एड़ेमेड़े अक्षरों मे लिखे पत्र मिले। मैने पिछले हफ्ते मसालेदार बैंगन आलू बनाये थे। बहुत ही बढ़िया बने थे। सुशील बाबू ने तो मुझे पढाई मे हराने की ठान ली है अब देखना यह है कि तुम लोग मुझे खाना बनाने में हरा सकोगी या नही। घर पहुँचने पर पहला इतवार छोड़ कर दूसरे इतवार को मेरी और तुम लोगों की खाना बनाने की बाज़ी रहेगी। इम्तिहान लेने वाले ठीक करके मुझे लिखना।

प्रमीला उर्मीला को कुछ गिनती उनती चुन्नन उन्नन ने सिखलाई या नहीं? चुन्नी के 'पडित' जी को मेरा नमस्ते पहुँचे।

विलायती "पापा"

* * *

सुशील मियाँ सलाम,

यहाँ समुद्र मे परवाली मछलियाँ हैं जो उड़ती हैं और पानी पर तैरनेवाली चिड़ियाँ हैं। देखोगे?

'पापा'